देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

वर्ष - 6, अंक-35, जुलाई-अगस्त, 2021

देसहरियाणा
साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच
ISSN 2454 -6878

वर्ष -7, अंक-35 जुलाई- अगस्त 2021

सम्पादक

सुभाष चंद्र

यह अंक हमारी वेबसाइट
www.desharyana.in
पर उपलब्ध है।

सम्पादन सहयोगः अरुण कैहरबा, जयपाल, कृष्ण कुमार, राजकुमार जांगड़ा

सलाहकारः प्रो. टी.आर.कुंडू, सुरेन्द्रपाल सिंह, परमानंद शास्त्री, अशोक भाटिया, सत्यवीर नाहड़िया, जगदीश आर्य

प्रबंधनः कीर्ति सैनी, विकास साल्याण, योगेश शर्मा

प्रकाशक: सत्यशोधक फाउंडेशन, 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र -136118

संपर्क : सुभाष चंद्र - 94164-82156,
विकास साल्याण - 90501-82156

ई-मेल : haryanades@gmai ।.com

वेबसाइट: www.desharyana.in

सहयोग राशि
(पंजीकृत डाक खर्च समेत)

आजीवन: पांच हजार रुपए;
वार्षिकः पांच सौ रुपए (संस्था)
तीन सौ (व्यक्तिगत)
एक प्रति: पचास रुपए

आनलाइन भुगतान के लिए
Satya Shodhak Foundation
Indian Bank, Sector-13, Kurukshetra,
A/C No. -50490177180
IFSC - IDIB000K849

प्रकाशित रचनाओं में प्रस्तुत विचार एवं दृष्टिकोण से सम्पादक का सहमत होनाआवश्यक नहीं।

सम्पादन एवं संचालन अव्यवसायिक एवं अवैतनिक। समस्त कानूनी विवादों का न्याय-क्षेत्र कुरुक्षेत्र न्यायालय।

संपादकीय 5

आलेख

बजरंग बिहारी तिवारी - भक्ति-कविता, किसानी और किसान आंदोलन 9

सूरजभान भारद्वाज - मुग़लकालीन किसान आंदोलन 38

इतिहास के पन्नों से

बूटा सिंह - बीसवी शताब्दी की पहली किसान लहर 49

कविताएं

जयपाल - 64, सुरजीत पातर 67

कहानी

प्रेमचंद - पूस की रात 56

विरासत

चौधरी छोटू राम - किसान की कराहट 70

रागनी

मंजीत भोला - 81 मंगत राम शास्त्री 82

पुस्तक समीक्षा

गोपाल प्रधान - खेती का इतिहास 78

स्मृति शेष

डॉ. महावीर नरवाल 84

डी.आर. चौधरी 87

आरती अन्नदेव तुम्हारी, जासे काया पले हमारी।
रोटी आदि रोटी अंत, रोटी ही कुं गावें सन्त।
रोटी मध्य सिद्धि सब साध, रोटी देवा अगम अगाध।
रोटी ही के बाजें तूर, रोटी अनन्त लोक भरपूर ॥
रोटी ही के राटारम्भ, रोटी ही के हैं रण खम्भ।
रावण मांगन गया चून, तांते लंक भई बेऊन ॥
मांडी बाजी खेले जूवा, रोटी ही पर कैरो पांडो मूवा।
रोटी पूजा आत्मदेव, रोटी ही परमात्व सेव॥
रोटी ही के हैं सब रंग, रोटी बिना न जीते जंग।
रोटी मांगी गोरखनाथ, रोटी बिना न चले जमात ॥

- संत गरीबदास

खेती-किसानी मानव समाज, संस्कृति, भाषा की रीढ़ है। किसान को जगत का पालनहार - अन्नदाता का दर्जा हासिल है। 'खेती उत्तम, मध्यम व्यापार, अधम नौकरी' कहकर किसानी की चाहे जितनी महिमा गाई गई हो, लेकिन उसका मुख्य नायक किसान हमेशा ही संकटग्रस्त रहा है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था यानी वर्ण-व्यवस्था में उसे सर्वोच्च नहीं, बल्कि निम्न दर्जे में स्थान दिया गया। किसानी का शासन-सत्ताओं के साथ हमेशा ही संघर्ष रहा। शासन-सत्ताओं के दमन व शोषण के विरूद्ध किसान-विद्रोहों की समृद्ध परंपरा है। मध्यकाल में संतों-भक्तों के साहित्य में भी इसे अभिव्यक्ति मिली और लोक साहित्य में भी।

आधुनिक काल में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध अनेक किसान-विद्रोह हुए। 1857 के महासंग्राम के लड़ाके वर्दी में किसान ही तो थे। खेती-किसानी का मुद्दा हर शासक के लिए प्रमुख रहा है।

भारत सरकार द्वारा बनाए गए तीन कानूनों के विरोध में पिछले कई महीनों से संघर्ष चल रहा है। किसानों को आशंका है कि इन कानूनों के लागू होने से उनका शोषण ही नहीं, बल्कि उनकी जमीनें भी छिन जायेंगी। इस आंदोलन को कुचलने के लिए सरकार ने समस्त हथकण्डे अपनाए। दमन-जुल्म किये। सड़कें खोदी गई, सड़कों पर कीलें ठुकवा दी। आंदोलनकारियों को आतंकवादी-अलगाववादी-नक्सलवादी अनेक 'खिताबों' से नवाजा गया, लेकिन कड़ाके की सर्दी, गर्मी और बरसात के मौसम को झेलते हुए किसानों ने आंदोलन न केवल जारी रखा, बल्कि इसमें लोग अधिक संख्या में शामिल होते गए हैं। सैंकड़ों किसान इसमें शहीद हुए हैं। इस आंदोलन ने शासन-तंत्र की संवेदनशून्यता और पूंजीपतियों की पक्षधरता को भी स्पष्ट तौर पर उजागर किया है।

तीन कानूनों के विरोध में पंजाब की धरती से शुरु हुआ यह किसान-आंदोलन इतना ओरगेनिक था कि जल्दी ही यह व्यापक जन-सांस्कृतिक आंदोलन में तब्दील हो गया। किसानों, महिलाओं, नौजवानों की हिस्सेदारी के अनेक सकारात्मक प्रभाव पड़े। इस आंदोलन ने वर्ग चेतना, सामाजिक जागरुकता, सामूहिक बुद्धिमत्ता से निर्णय लेने में अदभुत सफलता हासिल की।

पंजाब से इस आंदोलन का आगाज हुआ, सबसे अधिक भागीदारी भी पंजाब से हुई इसका सबसे अधिक प्रभाव भी पंजाब के सांस्कृतिक जीवन पर पड़ा। पंजाब ने इस आंदोलन से गुरुओं-शहीदों द्वारा गढ़े अपने चरित्र को पुनर्प्राप्त किया है। इस आंदोलन के जरिये 'उड़ते पंजाब' से 'लड़ते पंजाब' का सफर तय किया है। निराश-हताश नौजवान में उमंग-उत्साह का संचार हुआ है, अपने भविष्य के लिए सात समंदर पार गए नौजवान अपने मुल्क के भविष्य के लिए सबकुछ छोड़

कर वापस लौटे हैं। हथियार-जाति-ग्लेमर में डूबी पंजाब की लोक-पॉप गायकी की रूह संघर्ष में तपी जन-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति से निखर गई है। उसने अपनी जड़ें अपनी सांस्कृतिक जमीन में लगा ली हैं।

हरियाणा-पंजाब के सियासतदान दशकों तक लोगों में परस्पर संदेह व द्वेष पैदा करके अपना राजनीतिक उल्लू सीधा करते रहे हैं। यह आंदोलन हरियाणा-पंजाब के लोगों के लिए 'बड़े भाई-छोटे भाई' का मिलन स्थल बना है। हरियाणवियों ने पंजाब के लंगर-संगत से सेवा-भाव आत्मसात किया है, स्वाभाविक तौर पर इसके हरियाणवी समाज पर दूरगामी परिणाम होंगे।

लोकतांत्रिक व व्यापक परिवर्तन के लिए विशाल जन-भागीदारी के आंदोलन किस तरह चलाए जाएं इससे सीख सकते हैं। धैर्य, साहस व वैचारिक स्पष्टता की जरूरत के साथ सामूहिक निर्णयों में विश्वास की मिसाल भी इस आंदोलन ने कायम की।

साहित्यकारों, गीत-संगीतकारों, कलाकारों, संस्कृतिकर्मियों ने इस आंदोलन को अनेक विधाओं में अभिव्यक्त किया है। इससे साहित्य-कला के स्वरूप में परिवर्तन आया है।

सितंबर-अक्तूबर 2017 में देस हरियाणा का अंक-13 'कृषि संकट और किसान आंदोलन पर केंद्रित' रहा, जिसमें खेती-किसानी से जुड़े संकट को चिह्नित करने की कोशिश की थी। लाखों की संख्या में किसानों की आत्महत्याएं चीख-चीख कर कह रही थी खेती और किसान संकट में हैं। कृषि संकट की अभिव्यक्ति जाट, मराठा, पटेल आदि किसान जातियों के सरकारी नौकरियों में आरक्षण पाने के उग्र व हिंसक आंदोलनों में होती रही है। इस आक्रोश को छद्म धार्मिक-भावना उन्माद में भी बदलने की कोशिशें हुई हैं। स्वामीनाथन आयोग की सिफारिशें लागू करवाने, कर्ज माफी, न्यूनतम समर्थन मूल्य प्राप्त करने, टुकड़े-टुकड़ों में किसान आंदोलन निरंतर चल ही रहा था। ये आवाज सुनी ही नहीं गई, बल्कि रोड़-रोलर की तरह सत्ता की नीतियां कुचलती हुई आगे

बढ़ रही थी। यह अचानक पैदा हुआ आंदोलन नहीं है, बल्कि कई वर्षों से इसकी आहट सुनी जा रही थी। किसान ने अंगड़ाई ली, आत्महत्या की बजाए लड़ने का रास्ता चुना। इसमें उसे कई बरस लगे।

इस अंक में

यह अंक किसान आंदोलन पर केंद्रित है। इसमें मध्यकालीन संतों-भक्तों के साहित्य में किसान जीवन की अभिव्यक्ति पर केंद्रित बजरंग बिहारी तिवारी का आलेख है। मध्यकाल के किसान विद्रोहों पर केंद्रित सूरजभान भारद्वाज का तथा आधुनिक काल के किसान-आंदोलन पर बूटा सिंह द्वारा अनुदित गुरुदेव सिंह सिद्धू का आलेख है। अंग्रेजी शासन के दौरान किसान की स्थिति पर प्रकाश डालता प्रसिद्ध किसान नेता चौ. छोटूराम का आलेख 'किसान की कराहट' है। किसान आंदोलन पर सुरजीत पातर व जयपाल की कविताएं है।

उम्मीद है कि आपको ये अंक पसंद आयेगा। इस अंक को कोरोना के कारण आनलाइन ही प्रकाशित कर रहे हैं। आपकी प्रतिक्रियाओं को इंतजार रहेगा।

सुभाष चंद्र

भक्ति-कविता, किसानी और किसान आंदोलन

□ बजरंग बिहारी तिवारी

दिल्ली की घेरेबंदी वाले किसान आंदोलन का लम्बा समय गुजर चुका है। राजधानी आने वाले कई रास्तों सिंघु बॉर्डर, टीकरी बॉर्डर, गाजीपुर बॉर्डर, नेशनल हाईवे आठ आदि पर लाखों किसान धरना दिए बैठे हुए हैं। वे यहाँ इसलिए बैठे हुए हैं क्योंकि उन्हें दिल्ली में आने से रोका गया है। पूर्णतया अहिंसक आंदोलनकारी किसानों पर आँसू गैस के गोले फेंके गए, वाटर कैनन चलाए गए। राष्ट्रीय राजमार्गों पर गड्ढे खोदकर, बड़े-बड़े अवरोधक खड़े करके, नुकीले-कंटीले तार लगाकर दिल्ली प्रवेश से रोका गया। इस कड़कती सर्दी में शताधिक आंदोलनरत किसानों की जान जा चुकी है। इन मौतों के लिए कौन जिम्मेदार है? 2014 में जब यह सरकार सत्ता में आयी थी तभी आशंकाओं के बादल घिर आए थे। शासन की बागडोर थामने के साथ यह सरकार दो अध्यादेश लाई थी- कॉर्पोरेट को जमीन आवंटित करने के लिए ग्रामसभा/ ग्राम पंचायत की मंजूरी की शर्त हटाना और जीवनरक्षक दवाओं की कीमत को सरकारी नियंत्रण से मुक्त करना। तभी लग गया था कि आने वाला समय कैसा होगा! नोटबंदी, जीएसटी, नागरिकता संशोधन क़ानून, कोरोना तालाबंदी इस सरकार के ऐसे 'ऐतिहासिक' निर्णय हैं जिनसे देश की आर्थिक, सामाजिक तबाही सुनिश्चित की गई है। कितने ही उद्योगपति बैंकों से प्रभूत धनराशि लेकर चम्पत हो चुके हैं। पीएम केयरफंड को लेकर जैसी शंका बलवती हुई है वह सरकार समर्थक लोगों को भी परेशान कर रही है।

नए कृषि कानूनों का परिचय

संत पलटू साहिब (1750-1815) की बानी है-
आगि लगो वहि देस में जहँवाँ राजा चोर।।
जहँवाँ राजा चोर प्रजा कैसे सुख पावै ।
पाँच पचीस लगाय रैनि दिन सदा मुसावै ।।
('पलटू साहिब की बानी' भाग-1, पृ. 108)

मूसना क्रिया चोरी करने, ठगने, उठा ले जाने के अर्थ में प्रयुक्त की जाती है। तीन नए कृषि विधेयकों के कानून बनते-बनते किसानों को यकीन हो चला था कि उन्हें बाकायदा मूसे जाने का पक्का बंदोबस्त सरकार ने कर दिया है। पिछले ढाई दशक में पाँच लाख से ज्यादा किसान आत्महत्या का रास्ता चुन चुके हैं। दो बरस पहले तमिलनाडु के किसान अपने मरे हुए भाई-बंधुओं के कपाल और कंकाल लेकर दिल्ली आकर जंतर-मंतर तथा संसद भवन के सामने विफल गुहार लगा चुके हैं। मरहम लगाने की बजाए सरकार ने घाव को गहरा करते हुए राज्य-सूची में दखल दिया।

लॉकडाउन पीरियड में जाने किस आपात स्थिति का अनुभव करते हुए तीन नए विधेयक प्रस्तुत किए गए। इन्हें लोकसभा में बहुमत के बल पर पास कराकर राज्यसभा में तिकड़म से पास करवा लिया गया। चौदह सितंबर को पेश हुए ये विधेयक राष्ट्रपति की तत्काल मंजूरी मिल जाने से सत्ताइस सितंबर को क़ानून में तब्दील कर

दिए गए। इन तीनों कानूनों में पहला है 'आवश्यक वस्तु (संशोधन) अधिनियम 2020'। पहली बार भारत में आवश्यक वस्तु अधिनियम 1955 में लागू हुआ था। उपभोक्ताओं को जरूरी चीजें उचित कीमत पर मुहैया करवाने के लिए सरकार ने इनके उत्पादन, मूल्य निर्धारण और वितरण का नियंत्रण अपने हाथ में रखा था। नए क़ानून ने वह नियंत्रण समाप्त कर दिया है। अब अनाज, दलहन, तिलहन, प्याज, आलू, खाद्यतेल की कालाबाजारी, जमाखोरी मान्यता प्राप्त है। इन वस्तुओं के व्यापार के लिए लाइसेंस लेना जरूरी नहीं रह गया है। भंडारण का फायदा बड़े व्यापारियों को मिलने जा रहा है, इसे समझने के लिए 'शास्त्र' पढ़ने की जरूरत नहीं है।

दूसरा क़ानून 'कृषि उपज व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्धन एवं सुविधा) 2020' है। सरकार ने भारतीय खाद्य निगम (एफसीआइ) की स्थापना न्यूनतम समर्थन मूल्य पर किसानों से उनकी फसल खरीदने के लिए की थी। एफसीआइ की सफलता का राज़ एपी.एम.सी. एक्ट में निहित था। पिछली सदी के सातवें दशक में राज्य सरकारों ने किसानों का शोषण रोकने और उपज का उचित मूल्य सुनिश्चित करने के लिए 'कृषि उपज विपणन समिति अधिनियम' (एपी.एम.सी. एक्ट) लागू किया था। इस अधिनियम का उद्देश्य किसानों का शोषण रोकना और उनकी उपज का वाजिब मूल्य तय करना था। इसके अनुसार किसानों की उपज अनिवार्य रूप से केवल सरकारी मंडियों के परिसर में खुली नीलामी के माध्यम से ही बेची जानी थी। किसानों की दुर्दशा को देखते हुए अपेक्षित यह था कि एपी.एम.सी एक्ट को बेहतर बनाया जाता। भारतीय खाद्य निगम को मजबूती दी जाती, उसका विस्तार किया जाता, उसके भंडारण गृहों की संख्या और गुणवत्ता बढ़ाई जाती। सरकारी मंडियों के परिसर में ही एफ.सी.आइ. कृषि उपज की खरीदारी न्यूनतम समर्थन मूल्य (एम.एस.पी.) पर करती है। तब यह वांछित था कि सरकारी मंडियों का जाल सघन किया जाता। वहाँ तक आम किसानों की पहुँच आसान की

जाती। अभी देश में कुल सात हज़ार मंडियां हैं। जरूरत बयालीस हज़ार मंडियों की है।

एम.एस.पी. निर्धारण को ज्यादा संवेदनशील एवं तर्कसंगत बनाते हुए यह सुनिश्चित किए जाने की आवश्यकता थी कि किसानी लाभ का उद्यम बन सके। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा पर कुठाराघात करने वाली सरकार ने 'कृषि उत्पाद व्यापार एवं वाणिज्य (संवर्धन एवं सुविधा) अधिनियम 2020' लाकर एपीएमसी एक्ट को ही अप्रभावी कर दिया। अब मंडी परिसर में कृषि उपज बेचने की अनिवार्यता समाप्त कर दी गई है। कोई भी ऐसा व्यक्ति जिसके पास पैन/आधार कार्ड है वह कहीं भी और कितनी भी उपज खरीद सकता है। उसका भण्डारण कर सकता है। फसल खरीद की दर तय करने में अब सरकार की कोई भूमिका नहीं होगी। मंडी से बाहर की गई खरीद पर कोई टैक्स भी देय नहीं होगा। बिडंबना यह है एपी.एम.सी. एक्ट को निरस्त करते समय केंद्र सरकार ने राज्य सरकारों से सलाह करने की जरूरत भी नहीं समझी। कृषि राज्य सरकार के क्षेत्र में आता है। तब राज्य सरकार से बात किए बिना एपी.एम.सी. को निष्प्रभावी बनाना संविधान और संघीय ढाँचे का उल्लंघन समझा जाना चाहिए।

तीसरा क़ानून 'कीमत आश्वासन एवं कृषि सेवाओं पर करार (सशक्तीकरण एवं संरक्षण) अधिनियम 2020' है। यह ठेके पर खेती को वैधता देने वाला क़ानून है। किसान और खरीदार के बीच विवाद होने की स्थिति में कोई भी पक्ष पहले समाधान बोर्ड जाएगा। वहाँ मामला न सुलझे तो सब-डिवीज़नल मजिस्ट्रेट के पास जाना होगा। तीसरे और अंतिम अपील के लिए कलक्टर तक जाया जा सकता है लेकिन अदालत (सिविल कोर्ट) जाने का प्रावधान नहीं है। एक औसत किसान साधनसंपन्न व्यापारी या बहुराष्ट्रीय कंपनी से विवाद की स्थिति में शायद ही पार पा सके। उसकी हालत तब और नाज़ुक होनी है जब स्वयं सरकार द्वारा सरकारी सुरक्षा कवच ध्वस्त कर दिया गया हो। बिहार पहला राज्य

था जहाँ एपी.एम.सी. की व्यवस्था 2006 में ख़तम कर दी गई थी। क्या वहाँ किसानों की हालत सुधरी? पंजाब, महाराष्ट्र और अन्य राज्यों में मजदूरी के लिए जाने वाले बिहारी श्रमिकों की संख्या देखकर उस राज्य की आर्थिक स्थिति का अंदाज़ लगाया जा सकता है। ठेके पर खेती दिए जाने की मंजूरी मिलने के बाद किसानों की हालत और बिगड़नी निश्चित है। किसानों को अपना भविष्य संकटपूर्ण दिख रहा है। वे इसीलिए संगठित होकर अपनी आवाज़ उठा रहे हैं और सरकार से तीनों कानूनों को रद्द किए जाने की मांग कर रहे हैं। किसानों का यह आंदोलन ऐतिहासिक है, अखिल भारतीय है; भले ही इसकी अगुआई पंजाब-हरियाणा के किसान कर रहे हों। इस आंदोलन में किसानों के साथ कृषि मजदूर, मंडी श्रमिक भी शामिल हैं। समाज के प्रायः सभी वर्ग – विद्यार्थी, बुद्धिजीवी, रचनाकार, वकील, अध्यापक, मेडिकल सेवाओं के लोग अपना समर्थन दे रहे हैं।

किसानी और राजसत्ता : बजरिए गुरुनानक

किसानों का सबसे बड़ा जमावड़ा सिंघु बॉर्डर पर है। यहाँ मुख्यतः पंजाब से आए किसान हैं। इस एनएच-24 पर दस किलोमीटर तक ट्रैक्टर-ट्राली के साथ किसान डटे हुए हैं। रात-दिन लंगर चलता रहता है। लोग प्रसाद-भोजन करते रहते हैं। कथाकार टेकचंद ने एक फेसबुक पोस्ट में लिखा है कि इस हाइवे के दोनों तरफ कच्ची बस्तियाँ हैं। इनमें मजदूर और छोटे-मोटे धंधे करने वालों के परिवार रहते हैं। मार्च में लॉकडाउन लगने के बाद इन्हें काम मिलना बंद हो गया।

भुखमरी की नौबत आ गई। किसानों के लंगर में इन परिवारों के सदस्य भी शामिल होते हैं। कई महीनों बाद उन्हें इस तरह का भोजन मिल रहा है। किसानों को असीसते हुए वे प्रसन्न हैं। संत दादूदयाल के शिष्य संत बाजीद (1548-1606, अनुमानित) का कहना था-

भूखो दुर्बल देखि नाहिं मुँह मोड़िये
जो हरि सारी देय तो आधी तोड़िये
दे आधी की आध अरध की कोर रे
हरि हाँ, अन्न सरीखा पुन्य नाहिं कोइ और रे।।
('संत सुधा सार' पृ. 333)

गुरुमत में इसे सच्चा सौदा कहा जाता है। नानकदेव (1469-1539) के बचपन की घटना है जब उन्हें घर का सामान खरीदने बाज़ार भेजा गया था। उस पैसे से वे जरूरतमंदों, साधु-संतों को रोटी खिला आए थे। इसे उन्होंने 'सच्चा सौदा' कहा था। गुरु नानक ने अपने सत्तर वर्षीय जीवन के 22 वर्ष यात्राओं में बिताए थे। उन्होंने चार बड़ी यात्राएं की थीं। अपनी पहली यात्रा में उन्होंने एक रात लालो बढ़ई के यहाँ गुजारी थी। गाँव का जमींदार भागो चाहता था कि नानकदेव उसके यहाँ ठहरें और भोजन करें। गाँव से विदा होते नानक ने दोनों घरों की रोटियों का अंतर स्पष्ट किया। उन्होंने दिखाया कि जमींदार की रोटी में शोषण-उत्पीड़न का रक्त है जबकि काष्ठशिल्पी लालो की रोटी में श्रम-जल। बॉर्डर पर बैठे किसानों को सरकार ने जितनी बार बातचीत के लिए बुलाया उन्होंने एक बार भी सरकार की रोटी नहीं स्वीकारी।

नानक के पिता कालूचंद तलवंडी के पटवारी होने के साथ खेतिहर किसान भी थे। उन्होंने अपने बेटे को भी खेती के काम में लगाया था। किसानी के अनुभव नानक की वाणी (कविता) में निबद्ध हैं। भक्ति-साधना का रूपक बाँधते हुए उन्होंने कहा-

इहु तनु धरती बीजु करमा करो,

सलिल आपउ सारिंगपाणी ।
मनु किरसाणु हरि रिदै जंमाइलै,
इउ पावसि पदु निरबाणी ।।
('गुरु नानकदेव : वाणी और विचार', पृ. 157-8)

अपने मन को किसान बनाकर शरीर रूपी खेत में बीज रूपी कर्म बोओ। भक्ति-भाव के जल से उसे सींचो। इस प्रकार हृदय-भूमि में हरिभाव की फसल उगाओ। मुक्ति चेतना का सुख इस तरह हासिल करो।

किसानी को उदात्त कार्य बताते हुए नानकदेव ने कहा कि राजा को सयानापन दिखाने से बचना चाहिए। किसान के सामने यह भुलावा नहीं टिकेगा। किसान सत्य-रूप है। स्वयं परमात्मा सबसे बड़ा किसान है। सच्चा किसान वही है जो पहले धरती को कमाता है और फिर ध्यानपूर्वक उसमें सत्य नाम के दाने बोता है। नौ निधियों की फसल उपजती है। लहलहाती फसल इस कर्म-व्यापार का ध्वज (निशान) है-

आपु सुजाण न भुलई सचा वड किरसाणु ।
पहिला धरती साधि कै सचु नामु दे दाणु ।
नउ निधि उपजै नामु एकु करमि पवै नीसाणु ।।
('गुरु नानकदेव : वाणी और विचार', पृ. 153)

नानक साधकों, भक्तों से किसान बनकर ईमान की फसल उगाने की सलाह देते हैं-

अमलु करि धरती बीजु सबदो करि
सच की आब नित देहि पाणी ।
होइ किरसाणु ईमान जंमाइ लै
भिसतु दोजकु मूड़े एव जाणी ।।
('गुरु नानकदेव : वाणी और विचार', पृ.159)

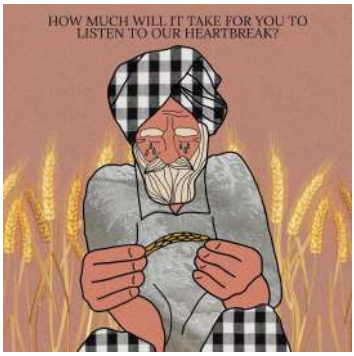

खेत को जोत-गोड़ (शोधन) कर उसमें शब्द-बीज डालकर सत्य-जल से सिंचाई करनी चाहिए। किसान बनकर ईमान की फसल उगानी चाहिए। इससे अलग स्वर्ग-नरक की बात मूर्ख-अज्ञानी करते हैं।

गुरुग्रंथ साहिब के पहले महले में गुरु नानक की बानियाँ हैं। ये बानियाँ कुल 31 रागों में हैं। यह बात गौर करने की है कि नानक श्रम और नैतिकता को महत्त्व देते हैं, किसानी को उदात्तता प्रदान करते हैं, साधु-संतों के सामने श्रद्धावनत रहते हैं लेकिन सुल्तान या राजसत्ता के समक्ष फटकार भरी भाषा का इस्तेमाल करते हैं। पहले राग ('सिरी राग') के पहले ही सबद में उन्होंने मदांध राजा को इस तरह संबोधित किया है-

सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ।
हुकुम हासलु करी बैठा नानका सभ वाउ ।।

तू शासक-सुलतान हो गया है, सिंहासन पर बैठता है, बड़ी सेना तेरे पास है। लेकिन यह न भूल कि सब उसी परवरदिगार के हुक्म से ही हासिल हुआ है। तुम्हारी सारी हवा (प्रभाव, वायु) उसी की देन है। सत्ता-मद में डूबे राजाओं से संत बखना ने कहा- "धरती परमेसुर की सारी। कोई राजा अपने सिर पर भार लेहु मत भारी।।"

इसी तरह (नानक-वाणी) महला-1 के चउपदे का पहला सबद है-

तू सुलतान कहा हउ मीआ तेरी कवन बड़ाई।
जो तू देहि सु कहा सुआमी मैं मूरख कहणु न जाई।।

क्या हुआ जो तू सुलतान हो गया? मियाँ, इसमें तेरा क्या बड़प्पन है? तुम क्या देते या दे सकते हो। देने वाला तो वह स्वामी/परमात्मा है।

मुझ अज्ञानी से उसकी महिमा कहते नहीं बन रही है। इसी 'चउपदे' के तीसरे सबद में नानक कहते हैं कि राजगद्दी हमेशा के लिए नहीं होती। राज्याधिकार का अभिमान झूठा है। इस मिथ्यात्व को राजा समझ नहीं पाता। सत्ता-भोग का चस्का लग जाए तो छूटता नहीं -

राजु रूप झूठा दिन चारि। नाम मिलै चानणु अंधियारि।।
चखि छोड़ी सहसा नहिं कोइ। बापु दिसै बेजाति न होइ।।
('गुरु नानकदेव : वाणी और विचार', पृ. 259)

कुछ लोग धर्म को व्यवसाय बना लेते हैं। धर्म का धंधा उनके स्वार्थों की पूर्ति भले ही करता हो, नानकदेव की निगाह में यह कृत्य धिक्कारयोग्य है। इसी की अगली पंक्ति में वे पीड़ित किसानों की सुध लेते हैं। ऐसे किसान जिनकी खेती उजड़ गई या उजाड़ दी गई है वे कहाँ जाएं? गुरु नानक कहते हैं कि उजड़ी खेती वाले किसान खलिहान क्योंकर जाएंगे! जब फसल ही न रही तब मड़ाई का प्रश्न नहीं उठता-

धृगु तिन्हा का जीविंआ जिं लिखि लिखि बेचहिं नाउ।
खेती जिनकी उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ।।
('संत सुधा सार' पृ. 157)

सवाल यह कि जिनकी खेती उजड़ रही है वे खलिहान न जाकर कहाँ जाएं? क्या ऐसे में उन्हें दुर्दिन के हेतु की पहचान नहीं करनी चाहिए? हमारे वक्त के किसानों ने यही किया। धर्म के धंधेबाजों को लगा होगा कि किसान तो धर्मप्राण हैं। इस आसन्न उजाड़ को वे नियति मानकर स्वीकार कर लेंगे। किसानों ने राजसत्ता की यह कामना पूरी नहीं की। उन्होंने उजाड़ के स्रोत की पहचान कर ली। कबीरदास ने लिखा है कि ठग तब तक सफल होते रहते हैं जब तक उनकी ठगी की पहचान नहीं होती। सच ज्ञात हो जाए तो ठगौरी पर विराम लग जाता है-

कहैं कबीर ठग सों मनमाना,
गई ठगौरी ठग पहिचानां।
('संत सुधा सार', पृ. 35)

जीवनदाता, अन्नदाता और संत मत

संत-कवियों ने किसान को प्राण-वायु माना है। नाम-स्मरण के एक रूपक में संत रज्जब ने लिखा कि नाम अनाज है जो काया के हृदय रूपी घर में विद्यमान-गतिमान रहता है, प्राणरूप किसान प्राण (=पवन/ ऑक्सीजन) का वहन करता है -

'नावं नाज उर घर बहै, बाहै प्राण किसान'। ('रज्जब बानी' पृ. 275) दूसरे प्रसंग में रज्जब ने लिखा- 'मनिखा देही खेति खित, माहै प्रान किसान।' यह शरीर मनका (माला) है, चित्त खेत है जिसमें साँसों का आना-जाना (=प्राणरूप) किसान है। ('रज्जब बानी', पृ. 72) किसान प्राण-रूप है क्योंकि वह अन्न उपजाता है। कबीर अन्न स्मरण को नाम स्मरण जितना ही महत्त्व देते हैं- 'जपियै नाम जपियै अन्न।' ('संत-साहित्य-संदर्भ कोश-1', पृ. 261) कबीर यह भी कहते हैं कि अन्न के बगैर अच्छा समय नहीं आता। अन्न त्याग के बाद भगवान नहीं मिलते

'अन्ने बिना न होइ सुकाल।
तजियै अन्न न मिलै गुपाल।।'

('संत-साहित्य-संदर्भ कोश-1', पृ. 261)

तुलसीदास कहते हैं कि राम के साक्षात दर्शन से जितना सुख मिलता है उतना आनंद एक भूखे व्यक्ति को अन्न ग्रहण करने से प्राप्त होता है-

'पियत नयन पुट रूप पियूषा।
मुदित सुअसनु पाइ जिमि भूखा।।'
(मानस, 2/111/6.)

संत सुंदरदास (1596-1689) ने लिखा-
'सब के आहिं अन्न मैं प्रांन।
बात बनाइ कहौ कोऊ केती,
नाचि कूदि कैं तूटत तांन।'
('संत-साहित्य-संदर्भ कोश-4', पृ. 1387)

सबके प्राण अन्न में बसते हैं। कोई कितनी भी ऊँची-ऊँची हाँक ले, आखिरकार पेट भरने के लिए अन्न की शरण में आना पड़ेगा। हरियाणा के संत गरीबदास (1717-1778) ने अन्न की दो आरतियां लिखीं- अन्नदेव की बड़ी आरती और अन्नदेवी की छोटी आरती। बड़ी आरती में 46 युग्मक (पंक्तियां) हैं तो छोटी आरती में 15 युग्मक। छोटी आरती में वे कहते हैं-

'रोटी पूजा आतम देव। रोटी ही परमातम सेव।।
दास गरीब कहै दरवेसा। रोटी बाँटो सदा हमेशा।।'

बड़ी आरती की ये पंक्तियां देखिए-

अन्न ही माता अन्न ही पिता।अन्न ही मेटत है सब बिथा।।
अन्न ही प्राण पुरुष आधारं। अन्न से खूल्हें ब्रह्म द्वारं।। ('संत-साहित्य-संदर्भ कोश-1', पृ. 260)

खेती जीवनाधार है। मारवाड़ वाले दरिया साहब साधो-संतजनों से ऐसी खेती करने की सलाह देते हैं जो काल-अकाल से बचाए। लंबे सांग रूपक में रचित उनका यह पद मुक्ति देने वाली भक्ति को निर्भय बनाने वाली खेती से समीकृत करता है। कृषि का समूचा कार्य-व्यापार संत-कवि के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और स्वानुभव से शब्दायित हुआ है-

साधो ऐसी खेती करई, जासे काल अकाल न मरई।

रसना का हल बैल मन पवना,
बिरह भोम तहँ बाई।
राम नाम का बीजा बोया, मेरे
सतगुर कला सिखाई ।।
ऊगा बीज भया कुछ मोटा, हिरदा
में डहडाया ।
किया निदान भरम सब खोया, जहँ
प्रेम नीर बरखाया ।।
...
जम गया दूध ब्रह्म कन निपजा,
सूरत अवेरन हारी।
हुई रास तब बरतन लागा, आनंद उपजा भारी ।।
निपजा नाज भवन भर राखा, ता मध सुरत समाई।
जन दरिया निर्भय पद परसा, तहँ काल न पहुँचे आई।
('दरिया साहब की बानी', पृ. 44)

अन्न उपजाने के लिए किसान हाड़-तोड़ मेहनत करता है। निरंतर काम में लगा रहता है। रज्जब अली की उद्भावना है कि अन्न उपजाने के इस काम में छः तत्व या प्राकृतिक शक्तियां (भी) मजदूर की तरह काम करती हैं- आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी के साथ चंद्रमा। परिश्रम न करने वाले आलसी, दरिद्र के पास अन्न कैसे पहुँच सकता है-

पाँचौ तत्त मयंक सौं, अन्नहि काज मजूर।
रज्जब सो दालिद्र मैं, आवै क्यों सु हुजूर।
('रज्जब बानी', दलिद्रता का अंग 151/8, पृ. 322)

संत रैदास ऐसे राज्य की, राज की कामना करते हैं जहाँ सबको अन्न मिले। कोई भूखा न रहे। छोटे-बड़े सब समान धरातल पर रहें-

ऐसा चाहूँ राज मैं, जहँ मिलै सबन को अन्न।
छोट-बड़ो सब सम बसैं, रैदास रहै प्रसन्न ।।
(रैदास रचनावली, पृ. 138)

रैदास की मानें तो अन्न की उपलब्धता सुनिश्चित कराना राजसत्ता का दायित्व है। अन्न की उपलब्धता तब होगी जब किसान फसल उपजा रहे होंगे, किसानी उत्तम होगी और भूमि उर्वरा होगी। राग गौड़ी में निबद्ध उनके ख्यात पद 'अब हम खूब वतन घर पाया' में रैदास की यह कामना किंचित विस्तार से वर्णित है। यह पद थोड़े-थोड़े अंतर से चार-पाँच रूपों में मिलता है। बेगमपुरा रैदास का काम्य/यूटोपियन देस/वतन है। यहाँ सभी निवासी समृद्ध हैं। अपराध नहीं होते। लोग किसी चीज़ के लिए तरसते नहीं। किसानों को भूमिकर और व्यापारियों को मालकर की तश्वीश= त्रास, चिंता, घबराहट नहीं है। भूमि उपजाऊ है और बाज़ार-व्यवस्था नियंत्रण में है-

काइम दाइम सदा पतिसाही।
दोम न सोम एक सा आही ।।

काइम, दाइम अरबी मूल से आए विशेषण-शब्द हैं। बेगमपुरा में बादशाहत हमेशा कायम/दृढ़ है। दोम फारसी का दोयम (दूसरा) है। सोम अरबी का सौम है। सौम का अर्थ है महंगा करके बेचना। यहाँ वस्तुओं के दाम एक-से रहते हैं। व्यापारी उनका भण्डारण करके, कृत्रिम अभाव की स्थिति रचकर महंगे में नहीं बेचते। हमेशा कायम रहने वाली बादशाहत से रैदास की क्या मुराद है? कोई मनुष्य राजा होगा तो वह जीवनांत को भी प्राप्त होगा। किसी की बादशाहत हमेशा कायम नहीं रह सकती! रैदास असल में राजा-रहित व्यवस्था की तरफ संकेत कर रहे हैं। वे श्रम/श्रमिक की बादशाहत चाहते हैं-

आवादाना रहम औजूद।
जहाँ गनी आप बसै माबूद।।

आवादान (फारसी) गुलजार-बसावट या उर्वरा भूमि है। यहाँ रहम/ करुणा का वजूद है। सब संपन्न हैं क्योंकि यहाँ स्वयं 'माबूद' बसता है। मा'बूद (अरबी) का मानी है- जिसको पूजा जाए। ईश्वर को मा'बूद कहा जाता है। यहाँ 'ईश्वर' से रैदास का आशय है-

स्रम को ईसर जानि कै, जउ पूजै दिन रैन।
रविदास तिन्हहिं संसार मंह, सदा मिलै सुख चैन।।
('रैदास रचनावली', पृ. 138)

बेगमपुर श्रम के बल पर बनने वाली व्यवस्था है। गम (दुःख-अंदोह-शोक) का समापन मेहनतकश समाज ही कर सकता है। यहाँ श्रम ही सत्य है, श्रम ही ईश्वर है। संत-कवि राज्य में व्यवस्था तो चाहते हैं लेकिन राजा नहीं। सुव्यवस्था और बादशाह में कोई अनिवार्य संबंध नहीं है।

एक ही राजा प्रजा को परेशान करने के लिए पर्याप्त है और अगर दो राजा हुए तो प्रजा का दुख द्विगुणित होना अवश्यंभावी है। यह सामंती समय में सामंतवाद की आलोचना है। तुलसीदास की समझ से दुराज में प्रजा का दुःख दिन-दिन दूना होता जाता है-

"दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख।
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है।"
('कवितावली', 7/81)

सिंधी-हिंदी संत कवि रोहल फ़कीर (1704-1783) कहते हैं- "दो राजा के राज में सुखी रहा न कोय।" ('संत रोहल फकीर ग्रंथावली' पृ.102) रीतियुगीन कवि बिहारी (1595-1663) दो राजाओं के शासन को प्रजा के लिए असहनीय बताते हैं-

दुसह दुराज प्रजान को क्यों न बढ़ै दुख दंद।
अधिक अंधेरो जग करै मिलि मावस रवि चंद।।
('बिहारी सतसई संजीवनी' दोहा संख्या- 357, पृ. 126)

बिहारी ने दिल्लीपति औरंगजेब और जयपुर नरेश जयसिंह के दुराज में दुखी प्रजा को देखा था जैसे आज के कवि राजसत्ता और कारपोरेट-सत्ता के दुहरे शासन में त्रस्त जनता को देख रहे हैं। लेकिन, थोड़ा ध्यान से देखा जाए तो अभी दो की जगह पाँच सत्ताएं शासन चला रही हैं-

i) देशी कॉरपोरेट की सत्ता

ii) बहुराष्ट्रीय कंपनियों की सत्ता

iii) संघ/हिंदुत्व की सत्ता,

iv) मोशा की सत्ता, और

v) पारंपरिक राजनीतिक/प्रशासनिक सत्ता।

यह बेवजह नहीं है कि जनता इन दिनों कुछ अधिक ही संत्रस्त है। देश में आग-सी लगी हुई है। आगमजानी कवि पलटू साहिब ने कहा था-

रैयत एक पाँच ठकुराई, दस दिसि है मौआसा।
रजो तमो गुण खरे सिपाही, करहिं भवन में बासा।।
पाप पुन्य मिलि करहिं दिवानी, नगर अदल न होई।
दिवस चोर घर मूसन लागे, मालधनी गा सोई।।
('पलटू साहिब की बानी-3', पृ. 17)

पाँच शासकों से शासित प्रजा दस दिशाओं से मूसी=शोषित की जाती है। दसों दिशाओं में ठग सक्रिय हो जाते हैं। तामसिक-राजसिक सिपाही उन ठगों के पिछलग्गू बना दिए जाते हैं। राजभवन पर उनका कब्ज़ा हो जाता है। पाप पुण्य में मिल जाता है। दीवानी (=मुकदमों) में ये दोनों जुड़ जाते हैं, जोड़ दिए जाते हैं। सच और झूठ में इस तरह घालमेल होता है कि राज्य की न्याय-व्यवस्था ध्वस्त हो जाती है। नगर में अदल=न्याय होता ही नहीं। ऐसे में (भयमुक्त) चोर जनता को दिन में ही मूसने=लूटने लगते हैं। इस लूट को रोकने की बजाए मुखिया चादर तान

सो जाता है। तुलसीदास का हृदय पहरुए = चौकीदार को चोरी करते देख हाहाकार कर उठता है-

कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनी देव
पाहरुई चोर हेरि हिय हहरानु है।
('कवितावली', 7/80)

संत-जन इसीलिए ऐसे राजा की कामना करते हैं जो किसान जैसा हो। किसान अपनी फसल की जैसी परवाह करता है उसी तरह राजा को रैयत की करनी चाहिए। माली और सूर्य भी इसी तरह के आदर्श हैं- "माली भानु किसान सम, नीति निपुन नरपाल।" ('दोहावली', 507) जैसे धरती से पानी लेता सूर्य महसूस नहीं होने देता किंतु बदले में बारिश करके सबको प्रफुल्लित कर देता है वैसे कर-संग्रह, लगान की वसूली के वक्त भानुवत भूप प्रजा को सताता नहीं है किंतु अपनी कल्याणकारी योजनाओं से उन्हें आनंदित कर देता है- "बरसत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ।" ('दोहावली', 508) आचार्यों, विद्वानों को भी किसान की तरह देखते हुए तुलसीदास ने यह रोचक सांग रूपक रचा-

बुध किसान सर बेद निज, मतें खेत सब सींच।
तुलसी कृषि लखि जानिबो, उत्तम माध्यम नीच।।
('दोहावली', 465)

किसान-रूपी आचार्य वेद-रूपी तालाब से पानी लेकर अपने मत/स्थापना-रूपी खेत को सींचता है। खेती के स्तर को देखकर उसके

मतवाद की श्रेणी तय की जा सकती है। राजा और आचार्य की तरह साधक के लिए भी किसान आदर्श हो सकता है। आत्मोन्नयन में लगे साधक के लिए यह शरीर खेत है, मन-वाणी-कर्म किसान है, पाप-पुण्य दो बीज हैं। इस खेत में जैसा बीज डाला जाएगा वैसी फसल काटी जाएगी-

तुलसी यह तनु खेत है, मन बच कर्म किसान।
पाप पुन्य द्वै बीज है, बवै सो लवै निदान ।।
('वैराग्य-संदीपिनी', दो.सं. 5)

मन की बात

'मन की बात' समकाल का बड़ा प्रचलित मुहावरा है। संत-कवियों ने इस पर पर्याप्त विमर्श किया था। अंतःकरण चार हिस्सों से मिलकर बनता है- मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इन चारों के दो युग्म हैं- मन-अहंकार और बुद्धि-चित्त। पहला युग्म नकारात्मक है और दूसरा सकारात्मक। मनमुखी अहंकारी होते हैं जबकि चित्तमुखी विवेकी। अंतःकरण में मन की प्रबलता के दुष्परिणामों को दर्शाने के लिए संत-कवि रोहल ने 'मन परबोध' नामक ग्रंथ ही लिखा। संवाद-शैली में लिखे इस काव्य-ग्रंथ में कहा गया है कि मन और चित्त में टकराव होता रहता है। मन को एकाधिकार चाहिए। इसके लिए वह हर तरकीब अपनाता है। अपनी निरर्थक मुखरता के बल पर वह चित्त को चुप करा देता है-

चित को कह्यो न मन करे, मन को कह्यो न चित्त।
काया नगरी ग्राम महं, दोऊ झगड़त नित्य ।।
चित्त चुपाता हो रह्या, देखा मन में जोर।
ताका बल लागे नहीं, बहुता भीरा जोर।।
('रोहल ग्रंथावली' पृ. 157)

विजयी मन राजा बन बैठता है। इस राजा के मंत्रियों में प्रमुख हैं- काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अभिमान-

काम क्रोध बलवान हैं, लोभ मोह अभिमान।
मन राजा के मंतरी, पाँच भये परधान ।।
('रोहल ग्रंथावली' पृ. 153)

बिहार वाले संत दरिया साहिब (1674-1780) ठगराज मन के संबंध में कहते हैं कि यह ऐसा चोर है जो अकेले ही सभी जीवों को पीड़ा देता फिरता है-

"कह दरिया मन ढहँकत फिरै।
एकै चोर सकल जिव पिरै।।"
('दरिया सागर', पृ. 36)।

संत मलूकदास के विचार से अभिमान में फूला फिरने वाला मन आखिरकार गर्व में ही सड़-गल जाता है- "बाबा मन का है सिर तले।। माया के अभिमान भूले, गर्व ही में गले।।" ('मलूकदास की बानी', पृ. 22) इस अविवेकी मन-मृग को ज्ञान हांक ले आता है और ताँत से बाँध देता है-

मन मिरगा बिन मूंड़ का, चहुँ दिसि चरने जाय।
हांक ले आया ज्ञान तब, बाँधा ताँत लगाय।।
('मलूकदास की बानी', पृ. 32)

देवेन्द्र और नरेन्द्र दोनों को मनमुखी बताते हुए संत रज्जब अली कहते हैं कि इनकी तृष्णा कभी शांत नहीं होती, भले ही इन्हें तीनों लोकों की संपत्ति मिल जाए-

तीनि लोक मन को मिलै, तृष्ना तृपति न होइ।
रज्जब भूखे देखिये, सुरपति नरपति जोइ ।।
('संत रज्जब अली : वाणी और विचार', पृ. 232)

ऐसे मनाधिकृत नृपति की विशेषताओं पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए रज्जब कहते हैं कि वे ऊपर से विरक्त (फ़कीर, योगी) का बाना धारण करते हैं लेकिन भीतर अनंत भूख भरी होती है। वे जूते-चप्पल

त्यागने का दावा करते हैं परंतु समस्त लोकों की संपदा की प्यास अंतरतम में सुलग रही होती है। अपनी कपट कला से वे जनता को रिझा लेते हैं किंतु (जनता की) रोजी-रोटी के ठिकानों पर नित नए प्रहार करते रहते हैं। (राजा को दूसरे लोग चाहे न पहचान पाएं लेकिन) संत जन हितैषी का भेस धरे इस ठग को, लखैरे (आवारा) पाजी को पहचान जाते हैं-

विकृत रूप धर्यो बप बाहिर, भीतर भूख अनंत बिराजी।
ऊपरि सौं पनही पुनि त्यागी जु,माहिं तृषा तिहुं लोक की साजी।
कपट कला करि लोग रिझायो हो,रोटी की ठौर करी देखो ताजी।
हो रज्जब रूप रच्यो ठग को जिय, साध लखे सब लाखिर पाजी।।
('संत रज्जब अली : वाणी और विचार', पृ. 204)

इस मन को राजा से जोड़कर देखने के स्थान पर पलटू साहिब ने बनिया से जोड़कर देखा है। यह मन-बनिया अपनी आदत नहीं छोड़ता। डंडी मारता है। हमेशा घटतौली करता है। उसे सज-संवर कर घूमते रहने का बड़ा शौक है। मंहगी पोशाकें पहनता है। फिर ऐंठते-इतराते हुए चलता है। यह जनम-जनम का अपराधी है। महा लबार है। अव्वल दर्जे का झूठा है। उसके मुंह से कभी सच निकलता ही नहीं-

मन बनिया बान न छोड़ै।।
पूरा बांट तरे खिसकावै, घटिया को टकटौरे।
पसंगा माहै करि चतुराई, पूरा कबहुं न तौले।।
...
पाँच तत्त का जामा पहिरे, ऐंठा गुइंठा डोलै।
जनम जनम का है अपराधी, कबहूँ साँच न बोलै।।
('पलटू साहिब की बानी-3', पृ. 33)

संत पलटू स्वयं कांदू या कांदो बनिया थे। उन्होंने जिस तीव्रता से ब्राह्मण-आचार की बखिया उधेड़ी है उनके कई छंदों में वणिक-बेईमानी की चर्चा है। वे इस स्वभाव को असामधेय मानते प्रतीत होते हैं-

बनिया बानि न छोड़ै पसंघा मारे जाय।।
पसंघा मारे जाय पूर को मरम न जानी।
निसु दिन तौलै घाटि खोय यह परी पुरानी।।
('पलटू साहिब की बानी-1', पृ. 83)

आदत को 'खोय' कहते हैं। घटतौली की आदत छुटाए नहीं छूटती। मलूकदास इसीलिए तराजू की डंडी के दोनों सिरों को बराबर रखने की बात करते हुए बनिया को मन तौलने की सलाह देते हैं-
"मन नहिं तौले यार, का रे तौले बनिया।
घाट बाट सोध लेइ, सम रहे नकुनियाँ।।
('मलूकदास की बानी', पृ. 23)

संत सहजोबाई भी इसी बनिया जाति-समुदाय से थीं। वे मेवात के ढूसर बनिया परिवार में पैदा हुई थीं। उन्होंने काया-नगर से मन-बनिया के निष्कासन की मांग की है-

बाबा, काया नगर बसावौ।।
सत संतोष गहौ दृढ़ सेती, दुर्जन मारि भजावौ।।
पाप बनिया रहन न दीजै धरम बजार लगावौ।।
('सहजोबाई की बानी', पृ. 56)

सामाजिक सद्भाव के हिमायती संत पलटू कृषि-चक्र के लिए यह रूपक चुनते हैं- "मुसलमान रब्बी मेरी हिन्दू भया खरीफ। हिन्दू भया खरीफ दोऊ है फसिल हमारी। इनको चाहे लेइ काटि कै बारी बारी।" ('पलटू साहिब की बानी-1', पृ. 108) सभी घटक मिलकर समाज को पूर्णता देते हैं। मन इस पूर्णता को छिन्न-भिन्न करने में लगा रहता है। पलटू इसलिए बार-बार अनर्थकारी मन की तरफ ध्यान दिलाते हैं। अंतःकरण का संतुलन बिगाड़ देने वाले मन को वे अधम मानते हैं। यह मन चोरों का मुखिया है। अवगुणों की खान है। कुल मिलाकर, बड़ा क्रूर-कठोर है-

पलटू यह मन अधम है, चोरों से बड़ चोर।

गुन तजि औगुन गहतु है,
तातें बड़ा कठोर।।
('पलटू साहिब की बानी-3', पृ. 77)

देवसत्ता का राजनीतिक अर्थशास्त्र

जब हम किसी अर्थव्यवस्था को कृषि आधारित कहते हैं तो उसका अर्थ होता है कि व्यवस्था के अन्य अंग कृषि पर अवलंबित हैं। खेती में परिवर्तन से शेष प्रणाली में बदलाव हो जाएगा क्योंकि हर कड़ी एक-दूसरे से जुड़ी है। उस प्रणाली को ठप करना है तो किसानों से उनकी खेती छीन लेना पर्याप्त है। इस परस्परावलंबन को, कड़ी में टूट के परिणाम को तुलसीदास ने 'कवितावली' की इन पंक्तियों में दर्ज किया है-

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई का करी?"।। ('कवितावली', 7/97)

किसान से खेती अपहृत कर ली जाए तो पूरी व्यवस्था भरभरा पड़ेगी। भिखारी को भीख में अन्न नहीं मिलेगा। बनिए का वाणिज्य रुक जाएगा। नौकरियाँ मिलनी बंद हो जाएंगी। मिली नौकरियाँ छूट जाएंगी। छीजते हुए जीविकाविहीन लोग एक-दूसरे से पूछेंगे कि कहाँ चला जाए, क्या किया जाए? यह भय और उचाट की मनःस्थिति है। इस उजाड़ से बचने के लिए अधिकारी से लेकर भिखारी तक सबको किसान के साथ आना होगा। किसान बचेंगे तो ये भी बचेंगे। किसानी गई तो न व्यापार

बचेगा न नौकरी, न धर्म रहेगा न धंधा। न भीख मिलेगी न शिक्षा। तब ज्ञानियों से लेकर श्रमिकों तक, व्यापारियों से लेकर भिखारियों तक सभी को किसानी बचाने की लड़ाई लड़नी होगी। तुलसीदास का यही मंतव्य है। यह किंकर्तव्यविमूढ़ता "कहाँ जाई का करी?" की स्थिति तक पहुँचने से पहले की चेतावनी है। जैसे चिकित्सा पेशा होते हुए भी धंधा नहीं है वैसे अन्न के क्रय-विक्रय के बावजूद किसानी व्यापार नहीं है।

व्यापारियों को कृषि-क्षेत्र सौंपना पूरी प्रणाली को संकट के गर्त में डाल देना है। इस महादेश के अर्थशास्त्र को ध्यान में रखकर ही महाभारतकार ने व्यवस्था दी थी कि राष्ट्र की 'समिति' में ऐसे नेता न भेजे जाएं जो खेती नहीं करते, अन्न नहीं उपजाते।

'समिति' को आज की शब्दावली में संसद या विधानसभा कहेंगे- "न नः स समितिं गच्छेत् यश्च नो निर्वपेत् कृषिम्।" ('उद्योगपर्व', 36/31) अपनी किताब 'पुराण-विमर्श' में व्यास जी के इस कथन को उद्धृत करते हुए आचार्य बलदेव उपाध्याय ने टिप्पणी की है - "कृषि से अनभिज्ञ कुर्सीतोड़ बकवादी नेता भला किसानों का कोई मंगल कर सकता है?" (पृ. 358)

तुलसीदास का भरोसा रामराज्य में है। यह भरोसा रामराज्य की प्राथमिकताओं से उपजा है। किसानी अगर जीवन किंवा अर्थव्यवस्था का मूलाधार है तो रामराज्य में उसे प्रथम वरीयता दी गई है-

खेती बनि बिद्या बनिज, सेवा सिलिप सुकाज।
तुलसी सुरतरु सरिस सब, सुफल राम के राज ।।
('रामाज्ञा-प्रश्न', 7/2/7)

वरीयता-क्रम में सातों क्षेत्र हैं – खेती, मजदूरी, ('बनि' खेतिहर मजदूरी के लिए प्रयुक्त होता है), विद्या, वाणिज्य, सेवा (चिकित्सा, अभियांत्रिकी आदि क्षेत्र), शिल्पकारी-दस्तकारी, और राजकीय/सरकारी कामकाज। शासन-सत्ता की प्राथमिकताओं का यह क्रम-निर्धारण ध्यान देने योग्य है। मगर, इससे भी ज्यादा ध्यान देने योग्य बात दूसरी है।

तुलसीदास उस ताकत की पहचान कराते हैं जो ऐसी प्राथमिकताओं वाले शासन में बाधक है। वे साफ-साफ़ कहते हैं कि देवसत्ता रामराज्य की, खुशहाल समाज की सबसे बड़ी शत्रु है। आज की राजनीतिक शब्दावली में देवसत्ता को दक्षिणपंथ कहेंगे। दक्षिणपंथ धर्म से वैधता हासिल करता है। अपने को देवताओं से जोड़ता है। स्वयं को प्रश्नातीत ठहराता है। इसकी कथनी और करनी में विलोम संबंध होता है।

तुलसीदास ने 'मानस' के दूसरे सोपान में देवसत्ता का सविस्तार चित्रण किया है। राम को उत्तराधिकारी घोषित किया जाना है। अयोध्या की जनता परम प्रसन्न है। यह देवताओं को सहन नहीं। वे मलिन-मन के स्वार्थी लोग हैं। कुचक्र रचने में उन्हें महारत हासिल है- 'तिन्हहिं सोहाय न अवध बधावा। चोरहिं चांदिनि राति न भावा।।' जैसे चोर अंधेरी रात में सहज महसूस करता है वैसे देवसत्ता भयाकुल-शोकाकुल जनसमाज में सुरक्षित अनुभव करती है। अपनी सत्ता को सुरक्षित बनाए रखने के लिए वह चार स्तरों पर कार्य करती है- वह जनता को भयग्रस्त रखती है, समाज को भ्रमित करती है, लोगों में अ-रति (नफरत/ दूरी/ विभाजन) फैलाती है और जनसामान्य में उचाट (निराशा/ अस्थिरता) भरती है-

सुर स्वार्थी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट।।
(मानस, 2/295

दक्षिणपंथी दावा यही करते हैं कि वे रामराज्य की स्थापना करेंगे। तुलसीदास चेताते हैं कि ये इतने झूठे, क्रूर और कायर हैं कि मरे हुए को मारकर मंगल की कामना करते हैं- 'मुए मारि मंगल चहत।' (मानस, 2/301) रामराज्य की स्थापना के सबसे बड़े विरोधी तथाकथित रामभक्त ही हैं-

बंचक भगत कहाइ राम के।
किंकर कंचन कोह काम के।।
(मानस, 1/12/3)

अपने को रामभक्त कहने वाले ये ठग वास्तव में संपत्ति, हिंसा और काम-वासना के दास हैं। तुलसीदास इसीलिए कहते हैं रामराज्य में सबसे बड़ी बाधा यह देवसत्ता ही है-

राम राज बाधक बिबुध, कहब सगुन सति भाउ।

देखि देवकृत दोष दुख, कीजै उचित उपाउ।।

('रामाज्ञा-प्रश्न', 7/6/3)

काव्यमीमांसाकार राजशेखर (नवीं-दसवीं शताब्दी) ने कवि के लिए वार्ता (शास्त्र) का ज्ञान आवश्यक बताया था। इस विद्या में कृषि तथा पशुपालन आते हैं। वार्ता का ज्ञान न हो तो कवि उत्पादक तथा अनुत्पादक वर्गों में अंतर नहीं कर सकता। संत काव्य में वार्ता-विवेक सहज ही गुंथा हुआ है। तुलसीदास ने एक दोहे में दोनों की बड़ी सटीक तुलना की है। छल-बल में सिद्ध अनुत्पादक वर्ग शिखर पर वास करता है जबकि उत्पादक किसान व श्रमिक नीचे रहते हैं-

अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान।

तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख, अन्न अरु पान।।

('वैराग्य-संदीपिनी', दो.सं. 39)

अत्यंत ऊँचे पर्वतों पर भुजगों (विषधरों) का वास है जबकि एकदम नीचे तलहटी में ईख, अन्न और पान की सुखद फसल होती है। जो परजीवी-पराश्रित है वह ऊपर है और जो उत्पादक है वह नीचे। परजीवी अपनी विषधर धूर्तता के दम पर बना हुआ है। वह नीचे वालों को चैन से बैठने नहीं देता। उसके कृत्य अत्यंत निकृष्ट हैं। दूसरों का सुख उससे देखा नहीं जाता- "ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।।" (मानस, 2/12/6)

ऐसी जनद्रोही सत्ता से कैसे निपटा जाए? तुलसीदास भरोसा देते हैं कि यह सत्ता अडिग-अपराजेय नहीं है। इसका अंत कौरवों जैसा होगा-

"राज करत बिनु काज हीं, ठटहिं जे कूर कुठाट। तुलसी ते कुरुराज ज्यों, जइहैं बारह बाट।।" ('दोहावली', दो.सं. 417)। दुर्दिन लाने वाली सत्ता अपने-आप नहीं जाएगी। इस सत्ता को 'बारह बाट' भेजने के लिए संगठित प्रयत्न करने होंगे। सत्ताधारी को नरक का रास्ता दिखाना होगा-

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।।
(मानस, 2/71/6)

ऐसे राजा के साथ क्या सुलूक किया जाए, इस प्रश्न पर संत गरीबदास ज्यादा स्पष्ट हैं। वे कहते हैं कि विश्वंभर का रूप धरे लोभी-लालची, कामी और पाखंडी राजा को निश्चय करके, योजना बनाकर मार देना चाहिए-

काम लुब्ध पाखंड रचा, धरे बिसंभर रूप।
ऐसा निःचा चाहिये,मारे राजा भूप।
('गरीबदास की बानी', 'निश्चय का अंग' 36, पृ. 74)

भय, भ्रम, अ-रति और उचाट की राजनीति इन दिनों उफान पर है। किसानों के आंदोलन को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए पुरज़ोर कोशिशें की जा रही हैं। किसानों को क्षेत्र, भाषा, वर्ग और धर्म के आधार पर बाँटकर आंदोलन को कमज़ोर करने का अभियान चल रहा है। इसमें सरकार को सफलता नहीं मिल रही है। मूल वजह कबीर ने पहचानी थी- 'गई ठगौरी ठग पहिचाना।' ठग की शिनाख्त कर ली जाए तो ठगी का जाल सिमटने लगता है। तब आसन्न उजाड़ के सम्मुख खड़े किसान खलिहान न जाकर बरबादी के स्रोत की घेराबंदी करते हैं।

कॉर्पोरेट को असीमित भंडारण की छूट क्या किसानों और उपभोक्ताओं को राहत प्रदान करने के लिए है? कालाबाजारी को वैध बनाने से किसका भला होने जा रहा है? एपीएमसी एक्ट को निष्प्रभावी बना देने से किसान विशालकाय मगरमच्छों का ग्रास बनने से कैसे बच पाएंगे? मंडी व्यवस्था को सुधारने की बजाए समाप्त कर देने से क्या किसानों का सशक्तीकरण होगा? ठेके पर खेती आरंभ होने से क्या किसानी औपनिवेशिक दौर में नहीं पहुँच जाएगी? अन्नदाताओं को अनाज पैदा करने की बजाए लाभदायक कैश-क्रॉप (नगदी फसल जैसे तम्बाकू, नील, अफीम...) आदि उपजाने के लिए क्या मजबूर नहीं किया जाएगा? बहुराष्ट्रीय कंपनियां या कॉर्पोरेट प्लेयर्स दुर्भिक्ष के हालात पैदा करके कितना वसूलेंगे? दो शताब्दी पहले के संत-कवि पलटू साहिब ने चौगुने दाम पर बेचे जाने का अनुमान लगाया था-

सस्ते मँहै अनाज खरीद के राखते।

महँगी में डारैं बेचि चौगुना चाहते ।।

('पलटू बानी-2', पृ. 68)

ठीक ऐसा ही अनुमान संत गरीबदास ने लगाया था। उनका साहूकार बेबस जनता को मूसने की पक्की योजना बनाता है। सोच-समझकर सौदा तय करता है। बेहद सस्ते में खरीदता है और अधिकतम महँगे में बेचता है-

महँगा सस्ता देख ले सौदा करे बिचार।
दुगुने तिगुने चौगुने करिहै साहूकार ।।
महँगा सस्ता देख ले सौदा करे समोय।
दूने तिगुने चौगुने कर ले जाता कोय।।

('गरीबदास जी की बानी', 'लै का अंग' पृ. 51.)

'समोय' शब्द पर ध्यान देना चाहिए। घुसकर सौदा करने को समोय कहा गया है। सस्ते में खरीदी करने वाला सीधे खेत से, खलिहान

से अनाज उठाता है। वह घर में घुसकर सौदा करता है। यहाँ उसका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं होता। यहाँ वह हाकिम-हुक्काम की नज़र में आने से बचा रहता है। भंडारण के बाद मुनाफे का खेल शुरू होता है। दुगुने से शुरुआत होती है। फिर, तिगुने, चौगुने ... जहाँ तक कीमत बढ़ायी जा सकती है, वह माल बेचा जाता है।

इसी तरह 'कोय' (कोई) शब्द पर ध्यान देना चाहिए। इससे पूर्व की पंक्ति में खरीदार की पहचान ज्ञात है। वह 'साहूकार' है। साहूकार को गाहे-बगाहे पकड़ा जा सकता है। उससे पूछा जा सकता है। लेकिन, 'कोय' को कैसे पहचाना जाएगा? जो घर में घुसकर सौदा तय करने वाला अनजाना खरीदार है उससे तो बकाये की रकम भी वसूली नहीं जा सकती। माल उठने के बाद उससे संपर्क कर पाना दुष्कर है। संत-कवि की यह आशंका नए कृषि कानून में साकार हुई है। किसान से उसकी फसल खरीदने के लिए अब लाइसेंस लेना आवश्यक नहीं रह गया है। बस, क्रेता ('कोय') के पास कहने को एक पैन कार्ड होना चाहिए। पैन कार्ड में पता नहीं लिखा जाता।

संकट की विराटता, गहराई और भयावहता का अनुमान करके ही देश के किसान उद्वेलित हैं, संगठित हैं तथा संकल्पित हैं। किसानों की तबाही का असर जिन पर पड़ेगा वे तबके भी आंदोलन के हिस्सेदार हो रहे हैं। तबाही का प्रारूप तैयार करने, लागू करने वाले पाँचों शक्ति-केन्द्रों को अपने किए का हिसाब देना ही होगा। इसे न तो इतिहास भूलेगा, न भविष्य। यह परिघटना लोकचित्त में बनी रहने वाली है-

"खोटे वणजिए मनु तनु खोटा होय।"
(महला-1, सबद-23)

नए कृषि क़ानून खोटे= घटिया वाणिज्य को मजबूती देने के लिए लाए गए हैं। इसका असर पूरे सिस्टम पर पड़ेगा। यह मन और तन दोनों को विकृत करेगा। हिंसा में उछाल आएगा। हत्याओं-आत्महत्याओं-मौतों का ग्राफ तेजी से बढ़ेगा। समाज के विभिन्न घटकों में पहले से चला आ

रहा टकराव घातक शक्ल अख्तियार करेगा। दासता का वह विस्मृत दौर अधिक मजबूत होकर नए संस्करण में वापसी करेगा। आंदोलनकारी किसान इसे रोकना चाहते हैं। वे मोर्चे पर डटे हुए हैं। किसानी उनका दीन है, उनका धर्म है। वे अपने दीन की रक्षा में सन्नद्ध हैं-

सूरा सो पहिचानिये, जो लड़े दीन के हेत।
पुर्जा पुर्जा कट मरै, तऊ न छाड़े खेत ।।

संदर्भ सूची

1. 'कबीर ग्रन्थावली' (संस्करण 1997), संपादक- डॉ. माताप्रसाद गुप्त, साहित्य भवन प्रा.लि. जीरोरोड, इलाहाबाद-3

2.'गरीबदास जी की बानी' (संस्करण 1998), बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद-2

3.'गुरु नानकदेव : वाणी और विचार' (प्र.सं. 2003), रमेशचन्द्र मिश्र, संत साहित्य संस्थान, 3611, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली.

4.'तुलसी ग्रंथावली द्वितीय खंड' (सं.2031 वि), सं. रामचंद्र शुक्ल आदि, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी.

5.'दरिया सागर' (बिहार वाले दरिया साहिब) (छठा संस्करण, 2003), बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद-2.

6. 'दरिया साहब' (मारवाड़) (सातवीं बार, 2003), बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद-2.

7. 'दोहावली' (छब्बीसवाँ संस्करण, सं. 2044), गो. तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर

8. 'पलटू साहिब की बानी' भाग-1, (संस्करण 1993) पलटूदास, बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद.

9. 'पलटू साहिब की बानी' भाग-3 (2001), बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद.

10. 'पलटू साहिब की बानी' भाग-2, (छठा रीप्रिंट, 1954) बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद-2.

11. 'पुराण-विमर्श' (1965, पुनर्मुद्रित 2013), आ. बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-01.

12. 'बिहारी सतसई संजीवनी' (1998), रामदेव शुक्ल, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, फैजाबाद.

13. 'मलूकदास की बानी' (छठी बार, 1997), बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद-2

14. 'रज्जब बानी', (1963), सं. डॉ. ब्रजलाल वर्मा, उपमा प्रकाशन, प्रा. लि. कानपुर.

15. 'रामचरितमानस' (सटीक मझला साइज, सं. 2073), गो. तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर.

16. 'रैदास रचनावली' (2006), सं. गोविंद रजनीश, अमरसत्य प्रकाशन, प्रीत विहार, दिल्ली-92.

17. 'संत रज्जब अली : वाणी और विचार' (2002), डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, संत साहित्य संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली-02.

18. 'संत रोहल फ़कीर ग्रंथावली' (2016), सं. डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र, संत साहित्य संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली-2.

19. 'संत साहित्य संदर्भ कोश' (पहला भाग, 2015), रमेशचन्द्र मिश्र, संत साहित्य संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली.

20. 'संत साहित्य संदर्भ कोश' (चौथा भाग, 2015), रमेशचन्द्र मिश्र, संत साहित्य संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली.

21. 'संत सुधा सार', (1969), वियोगी हरि, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली.

22. 'सहजो बाई की बानी' (सहज प्रकाश, संस्करण 2005), बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद-2.

23. नए कृषि कानूनों पर अर्थशास्त्री जया मेहता लेख यहाँ उपलब्ध है- https://www.infoway24.com/an-analytical-review-of-three-agriculture-acts-by-the-modi-government-by-dr-jaya-mehta

बजरंग बिहारी तिवारी, देशबंधु कॉलेज में प्रोफेसर
और विख्यात दलित चिंतक और आलोचक
संपर्कः 98682-61895

मुग़लकालीन किसान आंदोलन

□ सूरजभान भारद्वाज

मुग़लकालीन किसान आंदोलन से संबंधित इतिहास के विद्वानों ने बहुत कम लिखा है। बहुत पहले इरफ़ान हबीब ने अपनी पुस्तक, Agrarian System of Mughul India 1963 प्रकाशित की थी। उन्होंने अपनी पुस्तक में मुग़लकालीन कृषि विद्रोहों की चर्चा की है। उसके बाद इस विषय पर कोई गंभीर शोध नहीं हुए। हालांकि 1990 के दशक तक किसानों के शोध का इतिहास, विद्यार्थियों में काफ़ी आकर्षण का क्षेत्र माना जाता था। मगर इसके बाद धीरे-धीरे यह विषय शोध के लिए कोई आकर्षण का विषय नहीं रहा।

इसका एक कारण तो यह रहा है कि कैंब्रिज स्कूल और अमेरिकन विश्वविद्यालयों में होने वाले इतिहास लेखन में नये तरह के शोधों ने विद्यार्थियों का ध्यान अपनी तरफ़ खींचा है, जबकि विद्यार्थियों के लिए यह एक गंभीर शोध का विषय है। जब हम मुग़लकालीन या मध्यकालीन इतिहास को पढ़ते हैं या पढ़ाते हैं तब हमें मुग़लकालीन कृषि ढांचे को समझना होगा।

मुग़ल राजसत्ता कृषि ढांचे पर बनी हुई अर्थव्यवस्था पर टिकी हुई थी। इस अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ रूप से चलाने के लिए एक भू-राजस्व नीति बनायी गयी। इस भू-राजस्व नीति की विशेषता यह थी कि प्रत्येक किसान के कृषि उत्पादन का सही आकलन करके राज्य उससे लगभग

40 प्रतिशत भू-राजस्व के रूप में ले लेता था। इसके अलावा उसको कुछ दूसरे कर भी चुकाने पड़ते थे, जो दस्तूरवार (Customary) होते थे। परंपरागत रिवाज मानकर हर किसान, राज्य को भू-राजस्व चुकाना अपना एक तरह से दायित्व समझते थे। यदि बहुत अच्छी फ़सल हुई है तब तो वह ख़ुशी से भू-लगान चुका देता था, यदि फ़सल उतनी अच्छी नहीं हुई तब उसको भू-लगान चुकाने में परेशानी होती थी क्योंकि उसके अपने परिवार के खाने के लिए कुछ बचता नहीं था। आमतौर से किसान की बढ़िया फ़सल कम ही होती थी, क्योंकि फ़सल का अच्छा होना और ख़राब होना मानसून के अच्छे होने और ख़राब होने पर निर्भर करता था। सूखा पड़ना आम बात थी। कभी उसकी फ़सल ओलावृष्टि से ख़राब हो गयी तो कभी खड़ी फ़सल कड़ाके की सर्दी ने फूंक दी और कभी तेज़ आंधी से कटी हुई फ़सल उड़ गयी, तो कभी बाढ़ में डूब गयी।

चूंकि मुग़ल राज्य का जीवित रहना किसान द्वारा पैदा किया गया कृषि उत्पादन से प्राप्त भू-राजस्व पर निर्भर करता था, इसलिए मुग़ल स्टेट कृषि उत्पादन को बनाये रखने के लिए विशेष ध्यान देता था। ज़रूरतमंद किसानों को नयी फ़सल उगाने के लिए महाजनों से तक़ावी (Loan) का भी प्रबंध करवाता था।

अकाल के समय ज़्यादा से ज़्यादा कच्चे कुएं खोदाने के लिए भी किसान को प्रोत्साहित करता था। ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीन को जुतवाने के लिए अपने अधिकारियों (आमील) को समय समय पर आदेश भी देता था। राज्य का प्रयास रहता था कि ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीन पर खेती हो, जिससे उसको सर्वाधिक भू-लगान प्राप्त होता रहे। चूंकि बादशाह से लेकर गांव के पटवारी तक सभी कृषि उत्पादन से प्राप्त भू-राजस्व पर जीवित रहते थे, इसलिए मुग़ल राज्य ने बड़ी संख्या में भू-राजस्व अधिकारियों की नियुक्ति की ताकि वे भू-राजस्व की नीति को सही रूप से एवं सुचारु रूप से लागू कर सकें। साथ ही साथ किसानों से भी दस्तूर के हिसाब से भू-लगान की वसूली करें। इसका काफ़ी हद तक श्रेय मुग़ल

बादशाह अकबर को जाता है जिसने मुग़ल स्टेट की नींव रखते समय इन सभी बातों पर ध्यान दिया।

भू-राजस्व प्रणाली की तरह मनसबदारी व्यवस्था भी बनायी गयी थी जिसके अंतर्गत मुग़ल राज्य की सैनिकों के रख-रखाव की व्यवस्था को नियंत्रित किया गया था। इसमें प्रत्येक मनसबदार को अपनी हैसियत (पद और ओहदा) के हिसाब से सैनिकों की संख्या रखनी होती थी। इसके लिए मनसबदारों को उनके वेतन के अनुसार माप करके जागीरें दी जाती थीं। मनसबदारी व्यवस्था जिस पर मुग़लों की सैनिक ताक़त टिकी हुई थी और भू-लगान व्यवस्था जिस पर मुग़ल राज्य की आर्थिक नीति टिकी हुई थी – ये दोनों मुग़लों की बहुत महत्वपूर्ण संस्थाएं थीं जो एक दूसरे से जुड़ी हुई थीं, मगर इन दोनों संस्थाओं में एक दूसरे के साथ अंतर्विरोध बना हुआ था क्योंकि मुग़ल राज्य की यह एक नीति यह थी कि कोई भी मनसबदार अपनी जागीर तीन वर्ष से ज़्यादा नहीं रख सकता था, उसका दूसरी जगह की जागीर में तबादला कर दिया जाता था। यह नियम इसलिए बनाया गया था ताकि लंबे समय तक एक जागीर में रहने से मनसबदार वहां के किसान व ज़मींदारों के साथ मिलकर ताक़तवर न बन जाये, जिससे राज्य को ख़तरा हो सकता था। इसलिए मनसबदारों के जल्दी-जल्दी तबादलों की नीति अपनायी गयी, इससे बादशाह की ताक़त बढ़ती थी। मगर जल्दी-जल्दी तबादलों की नीति ने मनसबदारों की प्रवृत्ति को शोषणकारी बना दिया। मनसबदार को लगता था कि उसका तबादला होने वाला है इसलिए वह चाहता था कि उसकी जागीर से ज़्यादा से ज़्यादा भू-राजस्व की वसूली हो। उसका किसानों के प्रति कोई लगाव नहीं होता था और न ही वह कृषि उत्पादन से संबंधित कोई कल्याणकारी योजनाओं के बारे में सोचता था। बस उसके दिमाग़ में एक ही बात रहती थी कि ज़्यादा से ज़्यादा भू-लगान की वसूली हो।

हालांकि मुग़ल राज्य ने किसान के पक्ष में कुछ नियम भी बनाये थे जिससे मनसबदारों को किसानों पर ज़्यादतियां करने से रोका जा सके।

मगर मनसबदारों की किसानों को लूटने की प्रवृति बढ़ती चली गयी और भू-लगान अधिकारी भी किसानों का साथ देने की बजाय मनसबदारों की तरफ़दारी करते थे। इसलिए किसानों की फ़रियाद मुग़ल दरबार में प्रभावहीन हो जाती थी। इससे किसानों में असंतोष बढ़ता ही चला गया। किसानों का असंतोष विद्रोहों में बदलने लगा। सन् 1668 में गोकुला जाट (तिलपत का ज़मींदार) के नेतृत्व में बड़ी संख्या में किसानों ने मथुरा के इलाक़े में विद्रोह कर दिया। किसानों ने मथुरा के मुग़ल नायक फ़ौजदार की हत्या कर दी थी। धीरे-धीरे यह विद्रोह दूसरे इलाक़ों में भी फैल गया। मेवात के इलाक़े में मेव किसानों ने भी विद्रोह कर दिया। नारनौल के आसपास के इलाक़ों में सन् 1675-76 के सतनामियों ने मुग़ल सत्ता को चुनौती देते हुए विद्रोह कर दिया। उधर दक्खन में मराठों के भी मुग़ल सत्ता के ख़िलाफ़ विद्रोह शुरू हो गये। इसी तरह मुरादाबाद, गढ़ गंगा, हाथरस, सहारनपुर और हरिद्वार के इलाक़ों में भी किसानों ने विद्रोह कर दिये।

मुग़ल राज्य इस तथ्य को समझने में असमर्थ रहा कि किसान विद्रोह क्यों कर रहे हैं? समस्या कहां पर है? मुग़ल राज्य ने मनसबदारों को इसके लिए ज़िम्मेदार मानने की बजाय किसानों को ही ज़िम्मेदार ठहराया। इसलिए किसानों के विद्रोहों को दबाने के अनेक तरह के क़दम उठाये गये। विद्रोही गांव व किसानों को 'ज़ोरतलब' बताकर उनके ख़िलाफ़ फ़ौजी कार्रवाई की गयी। मगर किसानों ने अलग-अलग तरीक़े अपना कर, राज्य को अपने असंतोष से अवगत कराया।

मुग़ल राजसत्ता निरंकुश थी, जिसकी पूरी शक्ति का केंद्र बिंदु मुग़ल बादशाह होता था। किसानों और मुग़ल बादशाह के बीच काम करने वाले व मुग़ल बादशाह को समझाने वाले अनेक एजेंट होते थे। यही कारण होता था कि मुग़ल बादशाह के पास किसानों की फ़रियादों को ठीक से नहीं बताया जाता था। जब किसानों को मुग़ल दरबार में न्याय नहीं मिलता था तब उनकी उम्मीदों का सब्र टूट जाता था और फिर उनके

सामने बग़ावत के अलावा और कोई रास्ता बचता नहीं था। मुग़ल राज्य ने इस पर गंभीरता से विचार करने के अलावा और इसका समाधान खोजने की बजाय एक दूसरा रास्ता अपना लिया, वह था इज़ारा व्यवस्था लागू करना। अर्थात् जब किसानों के विद्रोह के कारण शाही मनसबदारों को अपनी-अपनी जागीरों का भू-राजस्व इकठ्ठा करने में भारी परेशानियों का सामना करना पड़ता था तब उन्होंने अपनी जागीरों को इज़ारा में देना शुरू कर दिया।

इज़ारा प्रथा एक तरह से ठेकेदारी प्रथा की तरह होती थी जिसमें इज़ारेदारों को किसानों से भू-लगान इकट्ठा करने का अधिकार दे दिया गया। ज़्यादातर इज़ारेदार वहीं के ही स्वबंस ज़मींदार या अधिकारी महाजन होते थे जिनकी उस इलाक़े में दबंगई होती थी। इज़ारा पाने वाले ज़्यादातर ज़मींदार वे लोग थे जो किसानों के विद्रोहों का संचालन कर रहे थे या महाजन वे लोग थे जो किसानों को तक़ावी स्वयं देते थे। अब ज़्यादातर मनसबदारों ने अपनी जागीरों को इज़ारा में देना शुरू कर दिया। दरअसल, इज़ारा व्यवस्था नियमित व्यवस्थित मुग़ल भू-राजस्व व्यवस्था का उल्लंघन था। किसानों के दृष्टिकोण से यह एक विनाशक व्यवस्था थी। मगर मुग़ल राज्य के लिए यह भू-राजस्व इकठ्ठा करने का आसान तरीक़ा था जिसमें मनसबदार अपनी जागीरों से भू-लगान इकठ्ठा करने की ज़िम्मेदारियों से मुक्त थे क्योंकि अब किसानों से उनका कोई सीधा वास्ता नहीं रह गया था।

भू-राजस्व इकठ्ठा करने की सारी ज़िम्मेदारी इज़ारेदार की होती थी। आमतौर से इज़ारेदार अपने इलाक़े का दबंग होता था जिसके पास अपनी सैनिक टुकड़ियां व छोटे-छोटे क़िले भी होते थे, जिन्हें 'गढ़ी' बोला जाता था। किसानों से भू-लगान इकठ्ठा करते समय वह अपना ख़र्चा भी भू-लगान के साथ जोड़ लेता था। अर्थात् मनसबदारों के भू-लगान की मांग पूरी करने के बाद वह अपना हक़ (ख़र्चा) भी किसानों से भू-लगान के साथ वसूल कर लेता था क्योंकि इज़ारेदार के अपने लोग होते थे जो

किसानों से भू-लगान इकठ्ठा करते थे। इज़ारेदार को उन्हें भी पैसा देना होता था। इसके अलावा इज़ारेदार किसानों से अलग से भी कुछ धन इकठ्ठा करता था। इज़ारेदारों के लिए इज़ारा प्रथा एक लाभकारी सौदा था जिसको प्राप्त करने के लिए उन्हें शाही मनसबदारों को रिश्वत भी देनी पड़ती थी। अंततः इज़ारा व्यवस्था पर होने वाला सभी तरह का ख़र्च किसान से ही वसूला जाता था।

मुग़ल दरबार से लिखी गयी वकील रिपोर्टों के अनुसार इज़ारा व्यवस्था को, मुग़ल साम्राज्य के अधिकांश भू-भाग में, लागू किया गया। किसानों के विरोध के बावजूद भी यह व्यवस्था बलपूर्वक चलती रही। इस व्यवस्था के ख़िलाफ़ अनेक इलाक़ों में किसानों ने राज्य के ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी – जैसे मेवात, पूर्वी राजस्थान, मथुरा, आगरा का इलाक़ा, गंगा जमुना का इलाक़ा जिसमें कोल (अलीगढ़), मेरठ, हाथरस, मुरादाबाद और गढ़ गंगा के इलाक़ों में किसानों ने नयी इज़ारा व्यवस्था के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया। हरिद्वार के इलाक़े में सभाचंद जाट के नेतृत्व में किसानों ने विद्रोह कर दिया। वकील रिपोर्ट के अनुसार पंजाब के इलाक़े कलानोर, बटाला, भट्ठा, रोपड़, संगरूर, सरहिंद और लाहौर में किसानों ने बंदा बहादुर के नेतृत्व में बग़ावत कर दी। मुग़ल बादशाह ने अब्दुल समद ख़ान के नेतृत्व में शाही सेना को, पंजाब के किसानों को कुचलने के लिए भेजा। मुग़ल दरबार में रिपोर्ट आयी कि गुजरात में नर्मदा नदी के आसपास के अहीर किसानों ने वहां के मनसबदार के ख़िलाफ़ बग़ावत कर दी है। उनको दबाने के लिए बादशाह से सहायता मांगी गयी। बंगाल सूबे के जहांगीराबाद के इलाक़े में किसानों ने इज़ारा प्रथा के तहत भू-लगान चुकाने से मना कर दिया। मालवा सूबे में मांडू के इलाक़े में किसानों ने इज़ारा प्रथा के तहत इज़ारेदार को भू-लगान चुकाने से मना कर दिया। आमेर राजा का वकील जगजीवन राम पचांली मुग़ल दरबार से अपने महाराजा को समय समय पर रिपोर्ट भेजकर सूचित करता है, जिनमें वह लिखता है कि अनेक जगहों पर किसानों व शाही

फ़ौज के साथ लड़ाइयां हुई हैं, जिनमें बड़ी संख्या में किसान मारे गये। इसके बावजूद किसानों के विद्रोह कम नहीं हो रहे हैं।

मेवात के इलाक़े में फ़ौज को देखकर किसान काला पहाड़ में छिप जाते हैं। मथुरा भरतपुर के इलाक़ों में जाट किसान चूड़ामन जाट के नेतृत्व में अनेक जगहों पर बने आमेर राजा के थानों को हटा दिया था। थूण, सिनसिणी, अंवार, सोगर और कठूंबर में जाटों ने अपनी मज़बूत गढ़ियां बना रखी हैं जहां पर जाट, मीणा व मेव किसान छिप जाते थे। हरिद्वार के इलाक़े में सभाचंद जाट को पकड़ने के लिए सेना भेजी जाती है, मगर ख़ाली हाथ लौटती है, क्योंकि सभाचंद जाट व उसके आदमी श्रीनगर के पहाड़ों में भाग कर छिप जाते हैं। वहां पर सरबुलंदख़ां की सेना ने हज़ारों किसानों को बंदी बना लिया है। पंजाब में गुरु बंदा बहादुर को पकड़ने के लिए अनेक बार सेनाएं भेजी गयीं, मगर गुरु कभी तो लाखी जंगल में छिप जाते हैं और कभी नाहन की पहाड़ियों में भाग जाते हैं। इस प्रकार किसानों और मनसबदारों की सेनाओं के बीच अनेक घटनाओं की चर्चा की है। वकील अपनी रिपोर्ट में यह भी लिखता है कि मनसबदार अपने-अपने इलाक़ों में किसानों को लुटवाते हैं।

आमीलों की रिपोर्ट के अनुसार मुग़ल दरबार में पटेलों की अगुवाई में अनेक परगनों के किसान फ़रियाद करने गये। किसानों का कहना होता है कि उनके गांव इज़ारा में न दिये जायें क्योंकि इज़ारेदार उनसे भू-लगान के अतिरिक्त तरह-तरह के दूसरे ऐसे करों की ज़बरन वसूली करते हैं जो उनसे पहले कभी नहीं लिये जाते थे। किसानों का कहना है कि इस प्रकार के करों की उगाही परंपरागत दस्तूरों का उल्लंघन है।

इसलिए यह राजधर्म की मर्यादाओं का भी उल्लंघन है। वकील रिपोर्ट बताती है कि किस प्रकार इज़ारा प्रथा ने किसान को लाचार और बेबस बना दिया है। मराठा पेशवा माधोराव-1 ने अपनी डायरी में लिखा था कि महाराष्ट्र के कोंकण और देश के किसान इज़ारा प्रथा के कारण बर्बाद हो गये हैं, इसलिए मैं चाहता हूं कि इसे ख़त्म करके नियमित भू-

लगान प्रथा को फिर से लागू किया जाये ताकि वे सुरक्षित महसूस कर सकें। आमेर राजा का वकील अपने महाराजा को इज़ारा के फ़ायदे बता रहा है कि इससे अनेक प्रकार की सुविधा और लाभ हैं। इस प्रथा के तहत राज्य प्रति वर्ष फ़सल (रबी और ख़रीफ़) इज़ारेदार से निर्धारित राशि ले लेता है और चिंता, दुविधा , हानि, आपत्तियां और फ़ायदा – ये सब इज़ारेदार के ज़िम्मे रहते हैं।

इस प्रकार इज़ारा प्रथा किसानों के दृष्टिकोण से एक बहुत ही अत्याचारी और विनाशक संस्था थी जिसने 17वीं सदी के उत्तरार्ध और 18वीं सदी के पूर्वार्ध में एक सुव्यवस्थित नियमित भू-राजस्व प्रणाली को हटाकर जगह ले ली थी। मगर राज्य के लिए यह एक आरामदायक व सुविधापरक तरीक़ा था जिसमें किसानों से भू-लगान वसूलने की पूरी ज़िम्मेदारी इज़ारेदार की होती थी। निस्संदेह इज़ारेदार भी इस प्रथा के तहत अपना अच्छा मुनाफ़ा कमाता था तभी तो यह प्रथा बहुत जल्दी से प्रचलन में आयी थी। किसानों के इस प्रथा के विरोध के तरीक़े केवल लड़ना मरना ही नहीं था बल्कि गांव के उजाड़ के बाद कहीं दूसरी जगह चले जाना और खेती लायक़ ज़मीन पर खेती न करना उसे बंजर छोड़ना, भू-लगान न चुकाना और पकी हुई फ़सल को काटकर चोरी करना आदि भी विरोध के तरीक़े थे।

परगना अधिकारी आमील अपनी रिपोर्ट में लिखता है कि अलवर सरकार के अनेक परगनों में बहुत से गांव उजड़ गये हैं। परगना पहाड़ी में कुल 209 में से 100 गांव उजड़ गये हैं। परगना खोहरी के काफ़ी गांव के किसान थूण के क़िले में भाग गये हैं। परगना ब्याना में कुल 139 गांव जिनमें 33 गांव उजड़ गये हैं और 42 गांव ज़ोरतलब हैं अर्थात 42 गांव के किसानों ने भू-लगान चुकाने से मना कर दिया है। परगना गुढ़ा, लिवाली और लालसोट में किसान खड़ी फ़सल को काटकर ले जा रहे हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण राजस्थानी दस्तावेज़ों (अठसठा और अर्जदासत) में भरे पड़े हैं।

इज़ारा प्रथा का प्रभाव यह हुआ कि 18वीं सदी के पूर्वार्ध में कृषि उत्पादन में तेज़ी से गिरावट आयी। अनेक परगनों में गांव उजड़ने लगे। खेती लायक़ ज़मीन बंजर हो गयी। खेत चरागाहों में बदल गये क्योंकि किसानों को लगता था कि खेती करके भी उसे भूखा ही रहना है। इज़ारा प्रथा में भारी भू-लगान चुकाने के बाद परिवार के भरण-पोषण के लिए कुछ नहीं बचता था। इसलिए अनेक गांव के किसान गांवों को ख़ाली करके रोटी की तलाश में जहां उन्हें ठीक लगता था वहां चले जाते थे या फिर विद्रोही ज़मींदारों की गढ़ी या जंगल और पहाड़ों में छिप जाते थे। खेती न करने से कृषि उत्पादन पर बुरा असर पड़ा।

मुग़ल साम्राज्य का वैभव, शासक वर्ग व अमीरों की शान-शौकत, शाही फ़ौज, नौकरशाही – सभी कृषि उपज की आमदनी पर निर्भर थे अर्थात् किसान की पैदावार से 40 से 50 प्रतिशत तक मुग़ल राज्य भू-राजस्व के रूप में लेता था जिस पर मुग़ल राज्य की अर्थव्यवस्था टिकी हुई थी। कृषि उत्पादन में गिरावट आने से मुग़ल राज्य को कृषि संकट का सामना करना पड़ा जिससे उसे एक भयंकर आर्थिक संकट झेलना पड़ा, अब भू-राजस्व बहुत कम मिलने लगा। मुग़ल राज्य के लिए इतनी बड़ी फ़ौज का रख-रखाव करना व कुलीन वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करना मुश्किल हो गया। परिणामस्वरूप मुग़ल साम्राज्य बिखर गया।

मुग़ल राज्य को यह आभास नहीं हो रहा था कि जिस इज़ारा व्यवस्था को अपनी ज़िम्मेवारी से मुक्त होकर आरामदायक प्रथा के रूप में लागू कर रहा है वही उसकी जड़ों को खोखला भी कर रही है। इतिहासकारों का एक वर्ग इज़ारा व्यवस्था को किसानों के दृष्टिकोण से मूल्यांकन न करके इज़ारेदारों के दृष्टिकोण से देखते हैं। वे लोग इसे व्यापार व वाणिज्य को बढ़ाने के लिए पूंजी संचय के उदगम का रास्ता मानते हैं। मगर वे इस तथ्य को समझना नहीं चाहते कि जब इज़ारा व्यवस्था ने इतने शक्तिशाली विशाल मुग़ल साम्राज्य को निगल लिया

तब व्यापारिक पूंजी संचय का सवाल कहां पैदा होता है? यह दलील भी ठीक उसी प्रकार से है जिस प्रकार आज के शासक, नये कृषि कानूनों को, कृषकों के दृष्टिकोण से न समझकर उनके फ़ायदे की बात करते हैं।

भले ही आज किसानों का इतिहास शोध के लिए एक आकर्षण का केंद्र न रहा हो, मगर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय इतिहास का स्वरूप किसानों के संघर्षों की गाथाओं की विरासत है। राज्यों के निर्माण की प्रक्रियाएं किसानों के बग़ैर संभव नहीं थी। इसी के साथ साथ विभिन्न धर्मों व संस्कृतियों का भी विकास हुआ था। तभी त हिंदू धर्मशास्त्रों में राजधर्म और प्रजा धर्म जैसी अवधारणाओं पर ज़ोर दिया गया। इसलिए किसानों के बग़ैर जगत मिथ्या है। राजधर्म में राजा को अपनी प्रजा (किसान) के साथ पुत्रों जैसा व्यवहार करना चाहिए इसलिए न्यायप्रिय राजा की अवधारणा को उत्तम माना गया। यही कारण रहा है कि विक्रमादित्य जैसे न्यायप्रिय राजा की कहानियां किसानों में लोकप्रिय रही हैं। कौटिल्य ने भी इस बात पर ज़ोर दिया था कि राजा के मंत्री को किसानों के साथ अपना निवास बनाकर रहना चाहिए ताकि राज्य निष्पक्ष होकर उनकी समस्याओं का निराकरण कर सके।

भारत में मुस्लिम शासकों ने भी किसानी पर ही पूरा ज़ोर दिया था। उनकी भारतीय जाति व्यवस्था, परंपराएं व रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उन्होंने किसानी को इतना प्रोत्साहन दिया कि बड़े-बड़े जंगलों को खेतों में बदल दिया गया और वहां पर नये-नये गांव व क़स्बों का प्रसार हुआ जिससे व्यापार व वाणिज्य को भी बढ़ावा मिला। फ़िरोज़शाह तुग़लक का उदाहरण हमारे सामने है जिसने

सिरसा से हांसी तक फैले बीहड़ जंगल को नहरों के जल से हरे-भरे खेतों में बदल दिया जिसके कारण वह इलाक़ा नये-नये गांवों व क़स्बों से भर गया। इस संबंध में जाट किसानों का इतिहास बहुत ही दिलचस्प है।

मुस्लिम शासकों ने जाट किसानों को बसाने में व प्रोत्साहन देने में बहुत योगदान दिया था। तभी तो लाहौर से लेकर आगरा तक जाट किसानों की बस्तियां इतनी ज़्यादा मिलती हैं। इसलिए किसानों का राजसत्ता के निर्माण में बहुत बड़ा योगदान रहा है। जैसे भारत में मुस्लिम राजसत्ता – दिल्ली सल्तनत से लेकर मुग़ल साम्राज्य के निर्माण में किसानों का योगदान अहम रहा है वैसे ही जोधपुर व बीकानेर राजपूत राज्यों के निर्माण में जाट किसानों का योगदान बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। इसी तरह आमेर (जयपुर), कोटा व बूंदी राजपूत राज्यों के निर्माण में मीणा जाति के किसानों की भूमिका को इतिहास में दर्ज किया गया है। किसान ने अपनी कृषि पैदावार से शासकों की संपन्नता और उसकी सार्वभौमिक ताक़त को बढ़ाया है। इसके बदले में वह शासक से न्याय की उम्मीद करता है जो एक लोक कहावत से समझी जा सकती है :

दस चगें बैल देख, वा दसमन बेरी।
हक हिसाबी न्याय, वा साकसीर जोरी।।

भूरी भैंस का दूधा, वा राबड़ घोलणा।
इतना दे करतार, तो बाहिर ना बोलना।।

सूरजभान भारद्वाज, सेवानिवृत प्रिंसिपल
संपर्कः 9968019358

बार की आबादकारी और बीसवीं शताब्दी की पहली किसान लहर

□ गुरदेव सिंह सिद्धू, अनुवाद - बूटा सिंह सिरसा

(वर्तमान समय में तीन कृषि कानूनों व बिजली बिल 2020 के विरोध में किसान आन्दोलन अपने शिखर पर है तथा जन आन्दोलन बन गया है। पंजाब का किसान इस आन्दोलन में नेतृत्वकारी भूमिका में है। देश के नैगम मीडिया, आई.टी. सैल व सोशल पर सक्रिय माध्यम वर्ग के एक हिस्से द्वारा इस आन्दोलन को मात्र पंजाब का आन्दोलन, पंजाब सरकार द्वारा प्रायोजित, खालिस्तानी, आतंकवादी आदि बताकर लोगों को धर्म, जाति, क्षेत्र व लिंग के आधार पर बाँटने की कोशिश है। लेकिन पंजाब के किसान आन्दोलन का अपना एक इतिहास है, विरासत है व लोगों में शुरू से विद्रोही भावनाएं हैं। पंजाब में बार की आबादकारी आन्दोलन हुआ था (बार का अर्थ जंगली क्षेत्र यहाँ कृषि हेतु सिंचाई आदि की बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं होती। संयुक्त पंजाब में नीली बार, सांदल बार, गंजी बार आदि बार के क्षेत्र थे। देश के बंटवारे के समय इनमे से अधिकतर क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया) किसान आन्दोलन के इतिहास व विरासत को पेश करता यह लेख पत्रिका में छापते हुए हमें ख़ुशी हो रही है। –सम्पादक)

19वीं शताब्दी के दौरान पंजाब के पश्चिमी क्षेत्र में जेहलम और सतलुज नदी के बीच जिला शाहपुर, झंग और मिंटगुमरी का विशाल मरुस्थलीय क्षेत्र था। इस क्षेत्र में नाममात्र की वर्षा होती थी वर्ष में औसतन मात्र 5 इंच। जिस कारण जगह-जगह या तो रेतीले टीले थे या दूर-दूर तक फैली हुई कंटीली जंगली झाड़ियाँ। इस कारण यह सारा क्षेत्र लगभग निर्जन था। यदि कहीं लोगों का निवास दिखाई देता था तो वह

था जंगली लोगों का निवास जो कि पशुपालन करके गुजारा करते थे । इस मरुस्थलीय क्षेत्र को नहरों से सिंचाई सुविधाएं प्रदान करके उपजाऊ बनाने की योजना पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर सर जेम्ज ब्राडवुड लायल जो 1887 से 1892 तक पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर रहे, ने बनाई। रावी, सतलुज और यमुना नदी में से निकाली गई नहरों के कारण मिली सिंचाई सुविधाओं से माझे, मालवे तथा दिल्ली के आस-पास के क्षेत्र में आई खुशहाली की मिसाल उनके सामने थी । इससे उत्साहित होकर उन्होंने चिनाब नदी के पानी को कृषि के लिए उपयोग करने हेतु लोअर चिनाब नहर निकालने की योजना बनाई । इस निर्जन क्षेत्र का पुनर्गठन किया गया तो सर सर जेम्ज लायल की दूरदृष्टि की कद्र करते हुए नए बनाए गए जिले तथा इसके जिला मुख्यालय को जेम्ज लायल के नाम पर लायलपुर का नाम दिया गया । जिला झंग और शेखुपुरा के कुछ क्षेत्रों को शामिल करके यहां बसाई गई कॉलोनी को लोअर चिनाब कॉलोनी कहते थे । आम बोलचाल में इसको 'बार' का क्षेत्र कहा गया । यहां पंजाब के केंद्रीय जिलों अमृतसर, जालंधर, लुधियाना, फिरोजपुर आदि से लाकर नए आबादकारों को बसाया गया । यह जमीन नाममात्र कीमत पर लगभग मुफ्त में ही दी जा रही थी । जिस कारण हर किसान यहां जमीन लेने का इच्छुक था परंतु सरकारी अधिकारियों ने इच्छुक व्यक्तियों के हाथ देखकर खुरदरे एवं सख्त हाथों, जो किसी व्यक्ति के मेहनती एवं जी जान से कार्य करने का प्रतीक थे, उन किसानों को ही ज़मीन अलाट की। नई जगह बसे इन किसानों का जीवन बहुत मुश्किलों भरा था। उन्होंने नया ठिकाना तो बना लिया था परंतु अभी सिंचाई सुविधाएं पूरी तरह से उपलब्ध नहीं हुई थी।

जमीन में से कंटीली झाड़ियों को उखाड़कर जमीन को समतल करना और सिंचाई के लिए खाले बनाए जाने थे । गर्मी के मौसम में लायलपुर की गर्मी का मुकाबला नहीं था । स्थानीय पशुपालक लोग चरागाहों को कृषि योग्य बनाने के लिए आए बाहरी किसानों को पसंद नहीं करते थे । वह उनके पशु चोरी कर लेते थे और तंग परेशान करने के

लिए और ढंग तरीके भी प्रयोग करते थे । परंतु सारी मुश्किलों का मुकाबला करते हुए नए आबादकार पूरी मेहनत से अपने काम में लगे रहे। परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों सालों से बेआबाद क्षेत्र की वर्ष दर वर्ष कायाकल्प होने लगी और जल्दी ही यह पंजाब का सबसे खुशहाल क्षेत्र बन गया ।

सांपों के सिरों पर पैर रखकर समृद्धि लाने वाले इन किसानों के लिए खुशी का समय ज्यादा देर न रहा इनकी समृद्धि को देखते हुए इसमें से अपना अंश प्राप्त करने के लिए पंजाब सरकार के मुंह से लार टपकने लगी । किसानों में बार के क्षेत्र में जाने के लिए रुचि पैदा हो गई थी तो सरकार ने नए बार क्षेत्रों में जमीन की अलॉटमेंट करते हुए लोअर चिनाब कॉलोनी के मुकाबले सख्त शर्ते लगाई थी । उदाहरण के लिए एक शर्त यह लगाई गई कि जमीन का लगान न देने एवं दूसरी शर्तों को पूरा न करने की सूरत में जमीन सरकार के पास चली जाएगी एक और शर्त के अनुसार बार की जमीन का बंटवारा रोकने के लिए जट सिख परिवारों में पिता की जायदाद सारे पुत्रों में बराबर बांटे जाने की परंपरा से उल्ट इसकी मिल्कियत केवल सबसे बड़े पुत्र की मानी गई। बेशक सरकार जानती थी कि शानदार युद्ध सेवाएं देने के बदले जिन सेवानिवृत्त सैनिकों को जमीन दी गई है, उनमें से अधिकतर अविवाहित हैं फिर भी यह शर्त लागू की गई कि जमीन मालक के बेऔलाद मर जाने की हालत में जमीन सरकार के खाते में चली जाएगी।

1906 में पंजाब सरकार ने अलॉटमेंट की शर्तों में समानता लाने एवं कालोनियों के सुचारू प्रबंधन का उद्देश्य बता कर आबादकारी बिल बनाया इसमें किसानों पर और अधिक बंदिशें थोपने के साथ-साथ उनके जमीन पर मिल्कियत के हक यहां तक सीमित कर दिए गए कि कोई आबादकार अपनी जमीन अपने खेत में लगे वृक्षों को भी नहीं काट सकता था । बिल में यह प्रावधान भी था कि इन शर्तों का थोड़ा सा उल्लंघन करने के दो दोष में केवल 24 घंटे का नोटिस देकर जमीन की

अलॉटमेंट रद्द की जा सकती थी । इन दिनों में ही सरकार ने बारी दोआब नहर के पानी से सिंचित होने वाली जमीनों का लगान कई गुना बढ़ा दिया। कपास और गन्ने की खेती के लिए तो यह दर पहले से दुगनी कर दी गई। माझा क्षेत्र विशेषकर अमृतसर और लाहौर के किसानों पर लगान बढने का भार सबसे ज्यादा पड़ा । फलस्वरुप माझे और बार के क्षेत्रों में व्यापक रोष फैल गया । जिसको अंग्रेज साम्राज्य की गुलामी से देश के लिए मुक्ति की लहर में बदलने के लिए नौजवान सरदार अजीत सिंह आगे आया ।

सरदार अजीत सिंह को देश प्रेम की घूटी विरासत में मिली लेकिन डीएवी कॉलेज लाहौर में पढ़ते हुए प्रिंसिपल लाला हंसराज की शिक्षा के कारण देश प्रेम की भावना और भी बलवती हो गई थी। 1906 में कोलकाता में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सम्मेलन में भाग लेने ने सोने पर सुहागे का काम किया। कोलकाता से वे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, श्री अरबिंदो घोष आदि गर्म दलीय नेताओं के विचारों से प्रभावित होकर आए। जनवरी 1906 में उनके कोलकाता से वापिस आने तक बार के क्षेत्र में नए बिल के बारे में कानाफूसी शुरू हो चुकी थी। सरदार अजीत सिंह ने इस मौके को संभालने का मन बनाया और वे पंजाब सरकार के इस अन्यायपूर्ण इरादे के खिलाफ लोगों को जागरूक करने के लिए सक्रिय हो गए ।

उन्होंने अपने भाइयों सरदार किशन सिंह और स्वर्ण सिंह एवं एक मित्र घसीटा राम को सहयोगी बनाकर पहले लाहौर शहर में जलसे करने शुरू किए और फिर बार के सारे क्षेत्र को ही अपना कर्म क्षेत्र बना लिया। उसने बार के क्षेत्र भाव लायलपुर, झंग, मिंटगुमरी आदि के साथ-साथ अमृतसर, फिरोजपुर में लोगों एकत्रित करके किसानों को सरकार के इन फैसलों के कारण उनके ऊपर पड़ने वाले बुरे प्रभावों के बारे में जागरूक किया और इस मुद्दे पर किसान वर्ग को सरकार के विरुद्ध एकजुट करने में सफल हुए । मार्च एवं अप्रैल के दो महीने सरदार अजीत सिंह सरकारी

आदेशों से प्रभावित क्षेत्र में चकरी तरह घूमे । इन दो महीनों में बिल का विरोध कर लोगों की 23 रैलियों में से 15 को उन्होंने स्वयं संबोधन किया । उन दिनों पंजाब में लाला लाजपत राय नेता की नेता के रूप में पहचान बन गई थी । इसलिए सरदार अजीत सिंह ने लाला जी को भी कई बार इन रोष रैलियों में बुलाया । 22 मार्च 1960 को लायलपुर में हुए बहुत बड़ी रैली में नौजवान लाला बांके दयाल ने पगड़ी संभाल जट्टा धुन वाला गीत गाया । किसानों के दुख दर्द को पूरी तरह बयान करने वाला यह गीत श्रोताओं के मन को छू गया । इस आंदोलन के दौरान हर किसी की जुबान पर चढ़ने वाला यह गीत आंदोलन की आत्मा के साथ इतना जुड़ गया कि यह आंदोलन ही 'पगड़ी संभाल जट्टा' आंदोलन के नाम से जाना जाने लगा । लालचंद फलक इस लहर का मुख्य कवि था । इस आंदोलन को खड़ा करने में सरदार अजीत सिंह की भूमिका का जिक्र भारत सरकार के गृह विभाग (राजनैतिक) की 1907 की कार्यवाहियों बारे में एक रिपोर्ट (नंबर 148-235) में इस प्रकार मिलता है आंदोलन गांव-गांव और जिले-जिले में चल रहा है । गुप्त तौर पर साजिशें रची जा रही हैं । सरदार अजीत सिंह सब लोगों की सहायता प्राप्त कर रहा है । वह बड़े जोशीले भाषण करता है तथा उसके भाषण में अंग्रेजों के लिए 'लानत' जैसे शब्द बार-बार दोहराए जाते हैं। लोगों में बहुत अधिक जोश पैदा हो रहा है । सरकार के इन दोनों फैसलों के विरुद्ध लोगों का बहुत अधिक विरोध था परन्तु सरकार ने इसके प्रति लापरवाही दिखाई और आबादकारी बिल 5 मार्च 1907 को कानून बन गया । उधर 1907 के मध्य तक पंजाब अंदर अंग्रेज विरोधी जन आंदोलन शिखर पर पहुंच गया। जगह-जगह लोग अंग्रेज सरकार के विरुद्ध रैलियां, धरने, जुलूस आदि आयोजित करने लगे । सरदार अजीत सिंह ने इस आंदोलन को व्यापक और शक्तिशाली रूप देने के लिए दिन-रात एक कर के काम किया । एक बार तो ऐसे प्रतीत हुआ जैसे यह रोष विद्रोह का ही रूप ले लेगा । इसलिए अंग्रेज सरकार सरदार अजीत सिंह की इन कार्यवाहियों के कारण घबरा गई । सरदार अजीत सिंह और उनके साथियों द्वारा तैयार

किए गए इस बगावती माहौल के बारे में पंजाब के तत्कालीन गवर्नर सर डैनजियल इबसटन ने टिप्पणी थी : सियालकोट, लायलपुर, रावलपिंडी आदि शहरों में अंग्रेज विरोधी प्रचार खुले और विद्रोही तरीके से किया जा रहा है । प्रांत की राजधानी लाहौर में प्रचार बड़ा जहरीला है और गंभीर अशांति पैदा हो रही है । इसके आधार पर उसने हिंदुस्तान सरकार को 30 अप्रैल 1907 को भेजी रिपोर्ट में लिखा, वर्तमान आंदोलन एक गंभीर रूप धारण कर रहा है गांव में अंग्रेजों के विरुद्ध जोरदार प्रचार शुरू कर दिया गया है । आंदोलनकारी अपने कार्य कार्य को पूरा करने के लिए जनता के दुख-दर्दों को साधन रूप में प्रयोग करने से भी संकोच नहीं कर रहे। इस आंदोलन के दौरान अक्सर ही लाला लाजपत राय जी सरदार अजीत सिंह के साथ होते हैं । इस कारण वर्तमान संकट में से निकलने के लिए सरकार ने इन दोनों के विरुद्ध कार्यवाही करने का मन बनाया। परिणाम स्वरूप अंग्रेज सरकार ने मई 1907 में 1818 के एक्ट 3 के अधीन इन दोनों नेताओं के गिरफ्तारी वारंट जारी किए। लाला लाजपत राय 29 मई और सरदार अजीत सिंह 3 जून को पुलिस की गिरफ्त में आए आ गए । अंग्रेज सरकार ने दोनों को कुछ दिनों के ही अंतर में निर्वासन की सजा सुना कर बर्मा की मांडले जेल में बंद कर दिया। सरकार की यह कार्यवाही लोगों को डराने की जगह उनकी सरकार विरोधी भावनाओं को और तीव्र करने का कारण बनी और आंदोलन और भी तेजी पकड़ने लगा। बार जमींदार एसोसिएशन जिसका प्रधान जैलदार सरदार ईशर सिंह डस्का और महासचिव चौधरी शहाबुद्दीन था, ने रोष रैलियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। जालंधर के राम करण दास ने उस समय पंजाब और बंगाल के क्रांतिकारियों को इकट्ठा करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। एसोसिएशन ने आबादकारी एक्ट को मंजूरी न देने बारे गवर्नर जनरल को मांग पत्र भी भेजा। स्थिति को बिगड़ती हुई देखकर वायसराय ने अपना वीटो का अधिकार प्रयोग करते हुए नया आबादकारी बिल ही वापस नहीं लिया बल्कि नवंबर 1907 में दोनों नेताओं को भी रिहा कर भी कर दिया। पंजाब सरकार ने नहरी

लगान बढ़ाए जाने का हुक्म भी वापस ले लिया। इस प्रकार यह आन्दोलन अपने उद्देश्य की पूर्ण प्राप्ति उपरांत सफलतापूर्वक समाप्त हुआ ।

आंदोलन की जीत का प्रभाव

इस किसान आंदोलन की जीत ने हिंदुस्तान के भावी राजनीतिक घटनाक्रम पर काफी प्रभाव डाला । इससे अब तक अंग्रेजी साम्राज्य के अजेय होने का बना हुआ भ्रम टूट गया । दक्षिणी अफ्रीका में भारतीयों के दुख-दर्दों के निवारण हेतु संघर्ष कर रहे गांधीजी इससे बहुत प्रभावित हुए । यकीनन उनकी तरफ से भविष्य में अंग्रेज सरकार के विरुद्ध लड़ने के लिए अपनाए गए तौर-तरीकों की पृष्ठभूमि में इस आंदोलन के दौरान अपनाए गए पैंतरों का असर था । इस आंदोलन में हिंदू, सिख और मुसलमान संप्रदाय के लोगों ने पूरी एकजुटता से भागीदारी की । सरकारी रुतबा प्राप्त जैलदार, नंबरदार आदि बेखौफ होकर लोगों के कंधे से कंधा मिलाकर लड़े । इससे भी बड़ी बात यह आंदोलन कुछ भविष्य के नए नेताओं को आगे लेकर आया । इनमें से दो- भाई भगवान सिंह 'प्रीतम' और रामचंद्र पेशावरी बाद में गदर पार्टी में सक्रिय रहे और मेहता आनंद किशोर को तो 1915 में गदरी क्रांतिकारियों खिलाफ दर्ज मुख्य मुकदमे में आरोपी नंबर एक बनाया गया । ' पगड़ी संभाल जट्टा' आंदोलन ने पंजाब में किसानों को एकजुट होकर संघर्ष करने का रास्ता दिखाया । जिस पर चलते अगले चार दशकों में किसानों ने कई बार अंग्रेज सरकार से लोहा लिया । निस्संदेह पंजाब के किसानों का वर्तमान संघर्ष भी देश की राजनीति पर दूरगामी प्रभाव डालेगा । इस आन्दोलन की खबरें पढ़कर देशभर के किसानों में जागृति आ रही है । पंजाब की जनता के विभिन्न वर्गों में आपसी भाईचारा व सहयोग बढ़ा है बेशक आंशिक तौर पर ही सही । लोगों की आशाओं की पूर्ति हेतु नए नेता उभर कर सामने आ रहे हैं जो राजनीतिक पृष्ठभूमि पर नासूर की भांति जड़ें जमा चुकी पैतृक राजनीति को मात देने का शुभ संकेत है । (पंजाबी ट्रिब्यून से साभार)

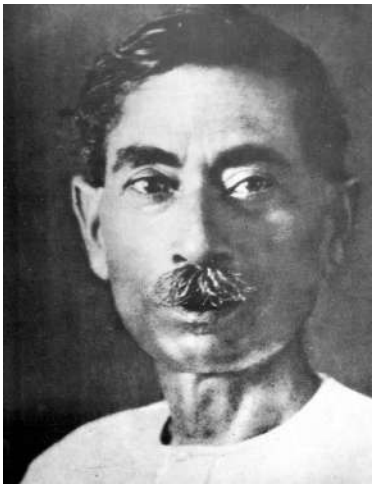

पूस की रात

प्रेमचंद

हल्कू ने आकर स्त्री से कहा- सहना आया है, लाओ, जो रुपये रखे हैं, उसे दे दूँ, किसी तरह गला तो छूटे।

मुन्नी झाड़ू लगा रही थी। पीछे फिरकर बोली- तीन ही तो रुपये हैं, दे दोगे तो कम्मल कहाँ से आवेगा ? माघ-पूस की रात हार में कैसे कटेगी ? उससे कह दो, फसल पर दे देंगे। अभी नहीं।

हल्कू एक क्षण अनिश्चित दशा में खड़ा रहा। पूस सिर पर आ गया, कम्मल के बिना हार में रात को वह किसी तरह नहीं जा सकता। मगर सहना मानेगा नहीं, घुड़कियाँ जमावेगा, गालियाँ देगा। बला से जाड़ों में मरेंगे, बला तो सिर से टल जाएगी। यह सोचता हुआ वह अपना भारी-भरकम डील लिए हुए (जो उसके नाम को झूठ सिद्ध करता था) स्त्री के समीप आ गया और खुशामद करके बोला- ला दे दे, गला तो छूटे। कम्मल के लिए कोई दूसरा उपाय सोचूँगा।

मुन्नी उसके पास से दूर हट गयी और आँखें तरेरती हुई बोली- कर चुके दूसरा उपाय ! जरा सुनूँ तो कौन-सा उपाय करोगे ? कोई खैरात दे

देगा कम्मल ? न जाने कितनी बाकी है, जों किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते ? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसी खेती से बाज आये। मैं रुपये न दूँगी, न दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला- तो क्या गाली खाऊँ ?

मुन्नी ने तड़पकर कहा- गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है ?

मगर यह कहने के साथ ही उसकी तनी हुई भौहें ढीली पड़ गयीं। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जंतु की भाँति उसे घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपये निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिये। फिर बोली- तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजूरी में सुख से एक रोटी तो खाने को मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है ! मजूरी करके लाओ, वह भी उसी में झोंक दो, उस पर धौंस।

हल्कू ने रुपये लिये और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-कपटकर तीन रुपये कम्मल के लिए जमा किये थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

पूस की अंधेरी रात ! आकाश पर तारे भी ठिठुरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पतों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े पड़ा काँप रहा था। खाट के नीचे उसका संगी कुत्ता जबरा पेट मे मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों कों गरदन में चिपकाते हुए कहा- क्यों जबरा, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने

आये थे ? अब खाओ ठंड, मैं क्या करूँ ? जानते थे, मै यहाँ हलुवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़े आगे-आगे चले आये। अब रोओ नानी के नाम को।

जबरा ने पड़े-पड़े दुम हिलायी और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुध्दि ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींद नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा- कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह राँड पछुआ न जाने कहाँ से बरफ लिए आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात तो कटे ! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है ! और एक-एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा जाय तो गरमी से घबड़ाकर भागे। मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ- कम्मल। मजाल है, जाड़े का गुजर हो जाय। तकदीर की खूबी ! मजूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें !

हल्कू उठा, गड्ढ़े में से जरा-सी आग निकालकर चिलम भरी। जबरा भी उठ बैठा।

हल्कू ने चिलम पीते हुए कहा- पियेगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, जरा मन बदल जाता है।

जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू- आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी में घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अपने पंजे उसकी घुटनियों पर रख दिये और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कम्पन

होने लगा। कभी इस करवट लेटता, कभी उस करवट, पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छाती को दबाये हुए था।

जब किसी तरह न रहा गया तो उसने जबरा को धीरे से उठाया और उसक सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद मे चिपटाये हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था, जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद यह समझ रहा था कि स्वर्ग यहीं है, और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उस कुत्ते के प्रति घृणा की गंध तक न थी। अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया। नहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी आत्मा के सब द्वा र खोल दिये थे और उनका एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पायी। इस विशेष आत्मीयता ने उसमे एक नयी स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडें झोकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छपरी से बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुमकारकर बुलाया, पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़-दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता, तो तुरंत ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति ही उछल रहा था।

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरु किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया, फिर भी ठंड कम न हुई । ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों मे रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है ! सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जायँगे तब कहीं सबेरा होगा। अभी पहर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरु हो गयी थी। बाग में पत्तियों को ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरूँ और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तियाँ बटोरते देख तो समझे कोई भूत है। कौन जाने, कोई जानवर ही छिपा बैठा हो, मगर अब तो बैठे नहीं रहा जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिये बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे आते देखा तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा- अब तो नहीं रहा जाता जबरू। चलो बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँठे हो जायेंगे, तो फिर आकर सोयेंगें। अभी तो बहुत रात है।

जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमति प्रकट की और आगे-आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में खूब अँधेरा छाया हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदे टप-टप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेहँदी के फूलों की खूशबू लिए हुए आया।

हल्कू ने कहा- कैसी अच्छी महक आई जबरू ! तुम्हारी नाक में भी तो सुगंध आ रही है ?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हडडी पड़ी मिल गयी थी। उसे चिंचोड़ रहा था। हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। जरा देर में पत्तियों का ढेर लग गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पाँव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव जल उठा। उसकी लौ ऊपर वाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हों अंधकार के उस अनंत सागर मे यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उताकर बगल में दबा ली, दोनों पाँव फैला दिए, मानों ठंड को ललकार रहा हो, तेरे जी में जो आये सो कर। ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा- क्यों जब्बर, अब ठंड नहीं लग रही है ?
जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानो कहा- अब क्या ठंड लगती ही रहेगी ?
'पहले से यह उपाय न सूझा, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते।'
जब्बर ने पूँछ हिलायी।
'अच्छा आओ, इस अलाव को कूदकर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जल गए बच्चा,
तो मैं दवा न करूँगा।'
जब्बर ने उस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा !
मुन्नी से कल न कह देना, नहीं तो लड़ाई करेगी।

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरों में जरा लपट लगी, पर वह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा- चलो-चलो इसकी सही नहीं ! ऊपर से कूदकर आओ। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

पत्तियाँ जल चुकी थीं। बगीचे में फिर अंधेरा छा गया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर जरा जाग उठती थी, पर एक क्षण में फिर आँखें बंद कर लेती थी !

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने लगा। उसके बदन में गर्मी आ गयी थी, पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाये लेता था।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुंड खेत में आया है। शायद नीलगायों का झुंड था। उनके कूदने-दौड़ने की आवाजें साफ कान में आ रही थी। फिर ऐसा मालूम हुआ कि खेत में चर रहीं हैं। उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा- नहीं, जबरा के होते कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता। मुझे भी कैसा धोखा हुआ!

उसने जोर से आवाज लगायी- जबरा, जबरा।

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत के चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ था। इस जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असह्य जान पड़ा। वह अपनी जगह से न हिला।

उसने जोर से आवाज लगायी- लिहो-लिहो !लिहो! !

जबरा फिर भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे। फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी, पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किये डालते हैं।

हल्कू पक्का इरादा करके उठा और दो-तीन कदम चला, पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभने वाला, बिच्छू के डंक का-सा झोंका लगा कि वह फिर बुझते हुए अलाव के पास आ बैठा और राख को कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़ डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थीं और हल्कू गर्म राख के पास शांत बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन पर वह चादर ओढ़ कर सो गया।

सबेरे जब उसकी नींद खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गयी थी और मुन्नी कह रही थी- क्या आज सोते ही रहोगे ? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया।

हल्कू ने उठकर कहा- क्या तू खेत से होकर आ रही है ?

मुन्नी बोली- हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला, ऐसा भी कोई सोता है। तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ ?

हल्कू ने बहाना किया- मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ कि मै ही जानता हूँ !

दोनों फिर खेत के डाँड़ पर आये। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है और जबरा मड़ैया के नीचे चित लेटा है, मानो प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छायी थी, पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिंतित होकर कहा- अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न मुख से कहा- रात को ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।

जयपाल की कविता

किसान आन्दोलन

दिल्ली बॉर्डर पर किसानों
के रंग ढंग देखकर सरकार हैरान है
सरकार परेशान है बैलगाड़ी में आना चाहिए था इसे तो
यह तो ट्रैक्टर लेकर आया है
टाट-बोरी लेकर आना चाहिए था इसे
यह तो गरम कम्बल लेकर आया है
झौंपड़ी में ठिठुरना चाहिए था इसे तो
इसने तो शाममयाना सजाया है
फटी धोती कुरते साथ अच्छा लगता था
जीन्स की पैंट और जैकेट पहन कर आया है
परना-तौलिया लपेटकर आना था इसे तो
पगड़ी संभाल कर लाया है
शांति के साथ आना था इसे तो
यह तो क्रांति के साथ आया है
यह किसान आया है!
या तूफ़ान आया है!!

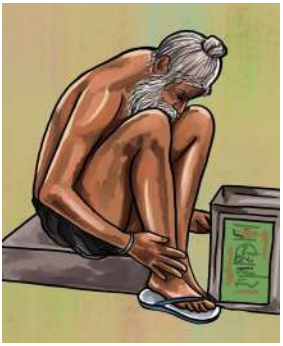

पूस की रात और नील गाय

नील गाय का पीछा करते-करते
प्रेमचंद का हल्कू
दिल्ली आ गया है

साथ में पत्नी मुन्नी और जबरा कुत्ता भी है
वह अकेला नहीं आया सारे गाँव को भी ले आया है
सरकार को समझ नहीं आ रहा कि
हल्कू को किसने बता दिया
नील गाय जंगल में नहीं
दिल्ली में रहती है।

* हल्कु, मुन्नी, जबरा प्रेमचंद की कहानी पूस की रात के पात्र।

प्रेमचंद और किसान

अभी तो प्रेमचंद की पूस की रात का हल्कू ही
कुंडली बॉडर पर आकर बैठा है
तो पूस की रात में सरकार थरथराने लगी है
सरकार परेशान है
अभी तो हल्कू ही आया है
कल कहीं माधव और घीसू भी साथ आ गए
तो फिर क्या होगा !
हल्कू, माधव, घीसू, होरी, सब के सब आ जायेंगे
प्रेमचंद के सारे पात्र यहीं आकर मेला लगाएंगे
धीरे धीरे
प्रेमचंद की सारी कहानियाँ
और सारे के सारे उपन्यास
यहां धरने पर आकर बैठ जाएंगे
फिर क्या होगा !
यह सोचकर
पूस की रात में सरकार काँप रही है
मन ही मन में प्रेमचंद और उसके पात्रों को कोस रहीं है।

* हल्कू, माधव, घीसू, होरी प्रेमचंद की कहानियों/ उपन्यासों के पात्र

भगत सिंह और किसान

किसान इस बार खाली हाथ नहीं आया है
वह अपने साथ भगत सिंह को भी लाया है
भगत सिंह के विचार लाया है
लेनिन की वह किताब लाया है
जो भगत सिंह फांसी के वक्त पढ़ रहे थे

जहां से भगत सिंह ने पन्ना मोड़ा था
वहीं से आगे वह पन्ने पढ़ रहा है
किसान खेत की मट्टी लेकर आया है
जैसे भगत सिंह लाए थे जलियां वाले बाग से
किसान कृषि कानून पढ़ रहे हैं
और अपनी बात आप रख रहे हैं
जैसे भगत सिंह ने रखे थे अपने विचार
अदालत में किसान पर्चे छाप रहे हैं
किसान पर्चे बाँट रहे हैं
जैसे पर्चे फैंके थे भगत सिंह ने असैम्बली हाल में
गूंगी-बहरी सरकार को सुनाने के लिए
किसान लड़ रहे हैं आजादी की दुसरी लड़ाई
जैसी भविष्यवाणी भगत सिंह ने की थी
सबको एक दिन लड़नी होगी यह लड़ाई
यह भी कहा था भगत सिंह ने
चलो भगत सिंह को फिर से पढ़ें
अपन हिस्से की लड़ाई हम भी लड़ें।

सुरजीत पातर की कविता

पंजाबी से अनुवाद - परमानन्द शास्त्री

ये मेला है

जहाँ तक नज़र जाती
और जहाँ तक नहीं जाती है
इसमें लोक शामिल हैं
इसमें लोक और सुर-लोक और तिरलोक शामिल हैं
ये मेला है

इसमें धरती शामिल, पेड़,
पानी, पवन शामिल हैं
इसमें हँसी, आँसू, और
हमारे गान शामिल हैं
और तुम्हें कुछ पता ही नहीं
इसमें कौन शामिल है!
इसमें पुरखों का दमकता इतिहास शामिल है
इसमें लोक-मन का रचा मिथहास शामिल है
इसमें धुन हमारी सब्र और आस शामिल है
इसमें सबद, सुरति, धुनि और अरदास शामिल है
और तुम्हें कुछ पता ही नहीं!
इसमें वर्तमान, अतीत संग भविष्य शामिल है
ईसाई, हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन और सिक्ख शामिल है

बहुत कुछ दिख रहा और कितना अदृश्य शामिल है
ये मेला है

ये है एक लहर भी, संघर्ष भी पर जशन भी तो है
इसमें रोष हमारा, दर्द हमारा, टशन भी तो है
जो पूछेगा कभी इतिहास तुमसे, प्रशन भी तो है
और तुम्हें कुछ पता ही नहीं
इसमें कौन शामिल हैं!
नहीं ये भीड़ कोई, ये तो रूहदारों की संगत है
ये गतिमान वाक्य का अर्थ है, शब्दों की पंगत है
ये शोभा-यात्रा से अलग ही है यात्रा कोई
गुरुओं की दीक्षा पर चल रहा है काफ़िला कोई
ये मैं को छोड़ हम, हमलोग होता जा रहा कोई
इसमें मुद्दतों से सीखे-समझे सबक शामिल हैं
इसमें सूफ़ियों फक्करों के चौदह तबक़ शामिल हैं
तुम्हें एक बात सुनाता हूँ, बहुत मासूम और मनमोहनी
हमें कहने लगी कल एक दिल्ली की बेटी सलोनी
तुम जब लौट जाओगे, यहाँ रौनक़ नहीं होगी
ट्रैफिक तो बहुत होगी मगर संगत नहीं होगी
ये लंगर छक रही और बाँटती पंगत नहीं होगी
घरों को दौड़ते लोगों में यह रंगत नहीं होगी
फिर हम क्या करेंगे
तो हमारी आँखें नम हो गयीं
ये कैसा स्नेह नया है
ये मेला है

घरों को लौटो तुम, राजी खुशी, है ये दुआ मेरी
तुम जीतो सच की ये बाजी, है ये दुआ मेरी
तुम लौटो तो धरती के लिए नयी तक़दीर होकर अब
नये एहसास, ताज़ा सोच और तदबीर होकर अब
मोहब्बत, सादगी, अपनत्व की तासीर होकर अब
ये इच्छराँ माँ और पुत्तर पूरन के मिलने की बेला है
ये मेला है

जहाँ तक नज़र जाती है
और जहाँ तक नहीं जाती
इसमें लोक शामिल हैं
इसमें लोक और सुर-लोक और तिरलोक शामिल हैं
ये मेला है

इसमें धरती शामिल, पेड़, पानी, पवन शामिल हैं
इसमें हँसी, आँसू और हमारे गान शामिल हैं
और तुम्हें कुछ पता ही नहीं
इसमें कौन शामिल है
ये मेला है।

किसान की कराहट

□ चौधरी छोटू राम

अनु. - हरि सिंह

ऐ मालिक दो जहान! सब्बुआलमीन! मेरे खलीक। मेरे मौला! हे परमात्मा परमेश्वर, सृष्टि के सृजनहार, सर्वशक्तिमान! हे वाहेगुरु! मैंने वह कौन-सा पाप-गुनाह किया है, जिसकी सजा के तौर पर हर समय मुसीबत की कैद में पड़ा रहता हूं? मेरा वह कौन-सा दोष है जो मैं अपने-आपको सदा कष्टों की जंजीर में बंधा पाता हूं? मेरा कसूर तो बता जिसके बदले में मेरे जीवन के आकाश पर हर क्षण मुसीबत की घटाएं छाई रहती हैं। आखिर मुझे भी तो मालूम हो कि कौन सी खता मेरी आफतों के सिलसिले का कारण है। मैंने ऐसा कौन सा पाप किया है कि बारह महीने किसी न किसी आपत्ति में फंसा रहता हूं। मेरे कौनन से वे दुष्कर्म हैं जिनका मैं दंड भोग रहा हूं? ऐसा क्या प्रारब्ध है कि आठों पहर चैंसठ घड़ी कोई न कोई कष्ट मेरे गले का हार बना रहता है।

कहां ये बेचारे किसान की नन्हीं सी जान और कहां रंग-बिरंगे लूटने वालों का यह अजदहा! जिधर देखता हूं शत्रु ही शत्रु दिखाई देते हैं। मेरी जान एक अजीब भंवर में फंस गई है। इंसान दुश्मन, हैवान दुश्मन। चांद दुश्मन, परंद दुश्मन, कुदरत की ताकतें दुश्मन, साहूकार दुश्मन, पराए दुश्मन। और मेरा कुफर माफ, मेरा मौला भी दुश्मन! कहा जाऊं? इस जान को कहां छिपाऊं? किससे अमान मांगूं? किससे पनाह, हिफाजत सुरक्षा पाऊं?

सतगुरु सच्चे पातशाह! मैं नेकनीयत हूं, नेक जीवन व्यतीत करता हूं। नेक स्वभाव वाला हूं, नेक चलन हूं, ईमानदार हूं। अपनी कमाई का खाता हूं। दूसरे की दौलत को मिट्टी के समान समझता हूं। चोरी नहीं करता, रिश्वत नहीं लेता, कम देकर अधिक नहीं लिखता, आए को आया मान लेता हूं। सूद दर सूद से आदमी का गला नहीं घोंटता। कम नहीं नापता, अपने घर से कम नहीं तोलता, दूसरे के घर से ज्यादा तोल कर नहीं लाता। गरीबों का पेट काटकर कोई कर वसूल नहीं करता। फिर क्यों मुझ पर यह निराला जुल्म है? और लोग पाप करते नजर आते हैं, और फिर भी राहत और समृद्धि उनके घरों में लौंडी बनी फिरती है। दूसरे लोग पाप करते देखने में आते हैं। मैं सुबह से सायं तक खेत में काम करता हूं। घर लौटकर सोने के समय से पहले तक पशुओं की सेवा में व्यस्त रहता हूं। बहुत सवेरे उठता हूं। फावड़े से पशुओं कबे ठान से गोबर को हटाता हूं। पशुओं को चारा डालकर भैंस का दूध निकालता हूं। बैलों को तैयार करके फिर बैलों की राह लेता हूं। जेठ-आषाढ़ की धूप सहता हूं। सावन-भादो की दहम को भुगतता हूं। ऐड़ी से चोटी तक पसीने से तर रहता हूं। माह पौह के कड़ाके की सर्दी झेलता हूं। सर्दी, गर्मी, बरसात, धूप सब मेरे सिर से गुजरती है।

अंधेरे उजाले में बिना डर फिरता हूं, चाहे कांटे लगें, भूंड चिपट जाए। चाहे बिच्छु काटे, चाहे सांप डंसे, परन्तु अपन काम में भंभीरी बना रहता हूं। फिर भी मुझे मोटे से मोटा कपड़ा और मोटे से मोटा खाना मिलने की आशा व विश्वास नहीं। साहूकार का कर्जा उतरने में नहीं आता। सरकार का मुतालबा समय पर देना कठिन हो जाता है। यह माजरा क्या है? मेरा घर आपत्तियों का अतिथि गृह है। ये बिन बुलाए अतिथि मेरे घर काबिज रहते हैं। जिन आपत्तियों का मैं शिकार हूं, कभी मुसलाधार वर्षा मेरी खेती को नष्ट कर देती है, कभी देर से बरसता है, जिससे ठीक समय रूप कजाई नहीं कर सकता। कभी समय पर वर्षा हुई, अच्छी हुई, सब फसलें बोई गई। लेकिन गायब हुई तो ऐसी हुई कि बीच में बादल के दर्शन नहीं हुए और फसलें सूखकर तबाह व बरबाद हो गई।

कभी पकी-पकाई फसल पर ऐसा बरसता है कि सब अनाज बरबाद व बरबाद हो जाता है। कभी तेज पिछवा हवा सारी खेती को सुखा देती है। कभी लंबी पिरवा हवा चलकर खेती में कीड़ा लगा देती है और फल-फूल आनो नहीं देती है। कभी ओले पड़ते हैं और मेरी फसल पर तबाही लाते हैं। कभी पाला पड़ता है और मेरी पाली-पोसी फसल पर हाथ साफ करता है।

कभी आंधी आई और रेत बरसा गई और मेरी 6 महीनों की कमाई को खाक में मिला गई। चने का फूल मर गया और गेहूं की बालियों में दाना न पड़ा। कभी टिड्डी आती हैं और खड़ी फसल को चट कर जाती हैं। कभी मेरे बुरे भाग्य से कातरा पैदा हो जाता है। देखने में छोटा सा कीड़ा है लेकिन ऐसा बलानोश है कि मेरी खेती में कुछ बाकी नहीं छोड़ता। और तो और जमीन के अंदर रहने वाला छोटा सा चूहा मेरे लिए एक भयानक शत्रु है। ऐसा लश्कर लाता है और मेरी फसल पर ऐसी चढ़ाई करता है कि मेरा भाग्य और मेरी खेती सब एक साथ ढह जाती है। हे ईश्वर! क्या करूं? इस संकट से निकलने का कोई मार्ग दिखाई नहीं देता। इस नन्हीं सी जान को कहां छुपाऊं? जमीन के पेट में शत्रु पैदा होते है, जमीन के सीने से दुश्मन पैदा होते हैं, फिजा से शत्रु पैदा होते हैं, हवा से दुश्मन पैदा होते हैं। पानी से दुश्मन पैदा होते है। ऐसे बेपनाह दुश्मनों से बचने या छुपने के लिए जगह कहां से लाऊं?

लेकिन कुदरत की ताकतों को छोड़ दीजिए। पशु-पक्षी व कीड़ों को जाने दीजिए। इनको कोई ज्ञान नहीं। ये मेरी मुसीबत को नहीं जानते, मेरे दुख को नहीं पहचानते। हजरत इंसान को लीजिए। यह मेरे साथ कैसे व्यवहार करता है? सर्वप्रथम मेरे साहूकार को लीजिए। मैं इनका जर-खरीद गुलाम हूं। खूब कमाता हूं। लहू पसीना एक कर देता हूं। हर छह महीने हर फसल की पैदावार अपने साहूकार की भेंट कर देता हूं। वह अपने काम का बड़ा माहिर है। मेरी चीज को तोलता है, मेरी आंखों में धूल डालता है। चालीस सेर की जगह चैवालीस सेर ले जाता है। बाजार

भाव से सस्ते दाम लगाता है। जब इसकी दुकान से कोई चीज लाता हूं, तो चालीस की जगह अड़तीस सेर तोलता है। बाजार के भाव से महंगा भाव लगाता है। मेरी खूब लुटाई होती है। मैं जानता हूं, परन्तु कुछ नहीं कर सकता। एक बार कर्ज में फंस गया। इस दलदल से निकलना कठिन है। बड़ों के जमाने से कर्ज की दलदल मेरे घर में पक्का लगा है सूद या सूद का सूद या इसका दुगना दिया, चैगुना दिय, मगर साहूकार की बही में आंक मेरे जिम्मे खड़े का खड़ा रहा। ऐ साहूकार! तू बड़ा निर्दयी है। छटे महीने मेरी सारी कमाई को समा ले जाता है। तेरी बदौलत मुझे कपड़े नसीब नहीं। मेरी बदौलत नन्हें-नन्हें बच्चे दुनिया की मामूली चीजों को भी तरसते हैं। तीज त्यौहार के दिन भी उन्हें अच्छा खाना नसीब नहीं होता। जो तेरे हाथों मुझ पर बीतती है। अगर वह किसी दूसरों के हाथों तुझ पर बीते, तो तुझे पता लगे कि तू मेरे साथ कैसा जुल्म कर रहा है। आखिर तेरे लालच की कोई सीमा भी तो होनी चाहिए। भूल से कई गुना तो तू ब्याज में वसूल कर चुका और ब्याज अब भी बचा हुआ बताया जा रहा है। मेरे पास जान के सिवा कुछ बाकी नहीं। क्या इसको भी बख्शना नहीं चाहता?

लेकिन मेरे साथ सिर्फ एक साहूकार ही क्रूर व्यवहार नहीं करता। और हजरात भी ऐसे ही सलूक से मेरी दिलदारी करते हैं। पटवारी को लीजिए। पड़ोसी है। तेरी गाय को मेरा बच्चा अपने डंगरों के साथ दिन भर चराता है। सायं इसके घर छोड़ आता है। चूरी, तूड़ी, ईंधन, पानी, गल्ला, फसलाना, भेंट आदि देकर हालात के अनुसार किसी न किसी रूप में अपने भरोसे को प्रकट करता रहता हूं और अपनी शक्ति के अनुसार इसकी सेवा से आंख नहीं चुराता। लेकिन जब कभी इससे काम पड़ जाता है तो खूब ऐंठ कर रिश्वत लेता है। एक ही बार में ऐसा कचूमर बना देता है कि फिर होश में आना कठिन हो जाता है। मेरी फसल बिल्कुल बरबाद हो जाती है। रुपए में चवन्नी भर भी बाकी नहीं रहती। आबियाना भी अदा करना पड़ता है और मामला भी देना पड़ता है। पास पैसा नहीं, घर में कोई चीज बिकाऊ नहीं और अगर है तो खरीदार नहीं। सरकारी

मुतालबा निश्चित तिथि पर अदा करना पड़ता है। मींह टल जाए मगर मुतालबा नहीं टल सकता। मौत टल जाए, मगर मुतालबा तो देना ही पड़ता है। लाचार साहूकार के पास जाता हूं, वह पचास के सौ लिखता हहै और कहकर लिखता है। मगर मैं विवश हूं। अंगूठा टेक देता हूं और सदा के लिए अपनी आर्थिक स्वतंत्रता और अपनी संतान की कमाई साहूकार के यहां गिरवी कर देता हूं।

गांव में धड़ाबंदी है। मेरे एक गैर आबाद ओर असुरक्षित सहन में मेरा कोई शत्रु चोरी-छिपके एक टूटी-फूटी बंदूक रख देता है और खुद ही पुलिस में सूचना दे देता है। प्रातः ही पुलिस आ धमकती है। तलाशी लेती है, परन्तु थानेदार इसको मेरे जिम्मे थोंप देता है। अपशब्द बोलता है। बुरा व्यवहार करता है। डराता है, धमकी देता है। नंबर दस में नाम दर्ज कराने का डरावा दिखाता है, जबकि नंबर दस के बदमाश तफतीश में इसके साथ शामिल हैं। नंबरदार, सफेदपोश और जैलदार भी उपस्थित हैं। इनमें से कोई न कोई थानेदार का दलाल है। सब मुझे यही सलाह देते हैं कि ले-दे के पीछा छुड़ा ले। थानेदार बात का बड़ा पक्का है। वह जो वचन देगा, उससे नहीं फिरेगा।

मैं अकेला और इतने भूत मेरे पीछे पड़े हुए हैं। अंत में तंग आकर उनकी सलाह स्वीकार लेता हूं। थानेदार इकरार करता है कि तू न्यायालय में जाकर छूट जाएगा। इस प्रकार जबर और जोर के नीचे थानेदार की भेंट पूजा करनी पड़ती है, लेकिन घर में तो चूहे कलाबाजियां खा रहे हैं। इसलिए साहूकार से गर्दन कटवानी पड़ी। उससे कर्ज लिया। थानेदार यह सब कुछ जानता था। लेकिन मूंजी जालिम को तनिक भी दया न आई। ऐ थानेदार! ऐ निर्दयी थानेदार! क्या तू पढ़ा-लिखा और एक जिम्मेदार अफसर होता हुआ यह न समझा कि तूरे एक खानदान को पीढ़ियों के लिए साहूकार का बेकौड़ी का गुलाम बना दिया?

साहूकार को जाने दीजिए। आखिर वह दूसरी कौम का है। पटवारी को भी छोड़िए। आखिर वह दूसरे इलाके का रहने वाला है।

थानेदार से भी दृष्टि हटाइए, क्योंकि वह भी दूर के नगर का निवासी है और सरकार का नौकर है। इसको मुझसे क्या सहानुभूति और क्या प्यार हो सकता है? लेकिन इस बात का क्या इलाज है कि मेरे भाई भी मेरी जड़ काटता है? जालिम भाई किसी प्रमाण पत्र का इच्छुक है या जागीर का मंगता है? कोई पदवी खिताब चाहता है या मुरब्बों का भूखा है या अपने किसी प्रियजन के लिए रोजगार प्राप्त करने की तड़प रखता है। सूखे से, बाढ़ से, ओले से, पाले से, चूहे से, टिड्डी से फसल को कितनी ही हानि हो, वह व्यक्ति वफादारी के जायके से इतना मजबूर है कि मेरी हानि को छुपाता है। असल को बहुत कम प्रकट करके बयान करता है। मैं कितनी ही पीड़ित और जर्जरित अवस्था में हूं परन्तु इस गुलाम के इस चाव से भरे इस बंदे के मुंह से यही शब्द निकलते हैं 'हुजूर के इकबाल से सब ठीक है।' सरकार रिआयत करने को तैयार हो, लेकिन ये स्वार्थी और नफ्स-परस्त बंदा सरकार से ज्यादा सरकार का शुभचिंतक है। यही कहता है कि अगर सरकार रिआयत करे तो इनकी इनायत है, कृपा है, लेकिन रिआयत जरूरी नहीं। अब बताइए क्या शिकायत करूं क्या फरियाद करूं? किससे शिकायत करूं? कहां जाऊं। कैसे जीऊं?

इस घर को आग लग गई घर के चिराग से।

दूसरे से क्या गिला जब स्वयं अपने दूसरों से अधिक निर्दयता दिखलाएं? दूसरों से क्या शिकायत जब स्वयं अपने परायों से अधिक दुख के कारण बन जाएं?

मन अज बेगानगां हरगिज न नालम।
कि बामन हरचे करदे आं आशना करद।।

(मैं दूसरों के विरुद्ध शिकायत नहीं करता, क्योंकि मेरे अपने भाई ही मुझ पर अत्याचार कर रहे हैं।)

अंत में सरकार को लीजिए। मेरे मालिक! मेरी जान व माल की मालिक सरकार! मेरी वफादारी में कलाम नहीं। मेरी सेवा में संदेह की गुंजाइश नहीं। युद्ध के समय, मैं इसका सैनिक, शांति के समय मैं इसका

कमाऊ पूत! फ्रांस में लड़ा, फलांडर्ज में लड़ा, दरे दानियाल में लड़ा, गोलीपोली में लड़ा, दक्षिण अफ्रीका में लड़ा। जहां गया, कदम पीछे नहीं हटाया। अपने खून से जमीन लाल कर दी। युद्ध समाप्त हुआ। तलवार उठाकर रख दी और हल, फाली और दरांती से दोस्ती लगाई। अटूट धन से सरकार के खजहाने को भरा रखता हूं। परन्तु सरकार मेरे साथ निराली बेरुखी और उदासीनता का व्यवहार करती है। मालगुजारी का गला-सड़ा पुराना तरीका छाती पर लगाए बैठी है। कहती है कि जमीन सरकार की है और किसान जमीन के प्रत्येक इंजज पर मामला देने का जिम्मेदार है। इससे मेरी रोटी पर कर लग गया है। दूसरों की रोटी माफ है। मेरी रोटी भी मामले से मुक्त नहीं कर दी गई। अपने परिश्रम और अपने रुपए से कुआं बनाता हूं।

सरकार नाल चाह लगा देती है। कहां तक बखानूं। प्रांत के करों का अधिकतर भार मेरे दुर्बल कंधों पर लाद दिया है। इस पर भी संतोष नहीं। शाकिर था, परन्तु शिकायत का एक शब्द भी जबान पर नहीं लाता था। परन्तु अब उत्पादन की कमी और कीमतों के बढ़न से निढाल हो चुका हूं। बच्चे भूखे मरते हैं। अब जरा सी ठेस को भी सहन करने की इच्छा शक्ति नहीं बची है। परन्तु सरकार को भी अभी तक यह विश्वास नहीं कि मेरे सारे साधन जवाब दे चुके हैं। असल में तो अब हालात ऐसे हो गए हैं कि किसी न किसी कारण से प्रत्येक फसल पर रिआयत की प्रार्थना करनी पड़ती है। परन्तु सिद्ध कहावत है कि हाकिम की आंखें नहीं होती, कान होते हैं और इन कानों तक शिकायत पहुंचने की मुझमें शक्ति नहीं। जबान खोलता शर्माता हूं, डरता हूं।

यही नहीं। सरकार मुझसे रुपया वसूल करती है। फिर इस रुपए से शहरवालों के लिए अस्पताल, सड़कें, मदरसे, कालेज, बाग, पार्क, पानी के नल, नालियां और बदरोएं आदि आधुनिक युग की तमाम सुख की वस्तुएं प्रदान करती हैं। सरकार मुझे भूल जाती है।

सरकारी नौकरी के विभागों में मुझे अक्सर बड़ा बेरुखा जवाब मिलता है। कोई स्थान रिक्त होता है या कहीं जगह खाली होती है तो मुझे कानों कान पता नहीं लगता। सिफारिश करने वाले अफसरों तक मेरी पहुंच नहीं। पेट पट्टी बांधकर अजीज को पढ़ाता हूं। लेकिन जब नौकरी का समय आता है तो मेरा अजीज मुंह ताकता रह जाता है और किसी लाला का लड़का नौकरी पर नियुक्त कर दिया जाता है। सरकार ने मेरी रिआयत के लिए एक विशेष प्रस्ताव पास भी किया है। परन्तु चंद विभागों को छोड़कर बाकी विभागों में अनगिनत लोगों की हथफेरियां के कारण इस पर उमिल अमल दरआमद नहीं होता। मैं जब इस मामले में सरकार से शिकायत करता हूं तो सरकार बुरा मानती है। यह समझती है कि यह शिकायत सरकारी अफसरों की नेकनीयती, सतर्कता तथा सावधानी पर एक प्रकार का आक्रमण है। खैर! मेरा तात्पर्य किसी अफसर की नेकनीयती और जागरूकता पर हो या न हो, मगर मेरी भोली सरकार ने यह कैसे समझ लिया कि इसके सारे अफसरान देवता या फरिश्ते हैं?

ऐ जुलजलाल तेजवन्त महामान्य, प्रभु! मैं बिल्कुल बेयार और बेसहाय हूं। दुश्मनों से चारों ओर से घिरा हुआ हूं। हरदम और हम के साथी कोई नहीं देता। दरिद्रता, भुखमरी और ऋण के घावों से निढाल हूं। मैं इतना दुखी और मायूस हूं कि कभी तेरी आस्था में तेरे रहम में और तेरे न्याय में संदेह होने लगता है, लेकिन फिर अंदर से यही आवाज आती है कि 'घबरा मत! मलिक के घर देर तो है, लेकिन अंधेर नहीं। उठ संभल, काम कर!' इस आवाज के सामने सिर झुकाता हूं। दिल दर्द की आवाज से मुझे चेतावनी दे चुका। मुतलक जुल सजानी को आगाह कर चुका। यह अपनी गम की आवाज अपने प्यारे-प्यारों और दूसरों को, सबको सुना चुका। अब तेरे भरोसे पर फिर सर गरमे अमल होता हूं। मेरी सरगरमी ओर मेरे अमल में अपने फैज से बरदत दे। मुझ पर दया कर।

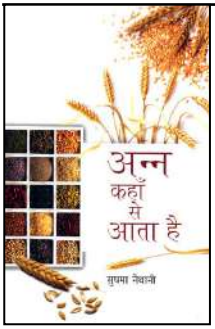

खेती का इतिहास

□ गोपाल प्रधान

2020 में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास यानी नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित सुषमा नैथानी की किताब 'अन्न कहाँ से आता है' सही अर्थ में हिंदी की उपलब्धि है। लोकोपयोगी विज्ञान श्रृंखला के तहत छपी इस किताब का उपशीर्षक 'कृषि का संक्षिप्त इतिहास: झूम से जी एम ओ तक' है। किताब में कुल दस अध्याय हैं और उनमें बेहद कसी हुई प्रस्तुति के साथ खेती के अलग अलग पहलुओं का गहन विश्लेषण है।

पुसत्क में स्थापित किया गया है कि आज जो फसलें उगायी जा रही हैं वे आदिकाल से मौजूद नहीं थीं। उनका यह नजरिया मार्क्स की इस मान्यता के मेल में है कि शुद्ध प्रकृति जैसी कोई चीज नहीं होती बल्कि पर्यावरण और मनुष्य की आपसी क्रिया से प्रकृति का निर्माण होता है। हजारों साल तक ध्यान से परखने के बाद मनुष्य ने उन फसलों का विकास किया जिनकी उपज से हमारा भोजन बनता-मिलता है। इन सभी फसलों की विविधता को सुषमा जी ने बहुत अच्छी तरह उजागर किया है।

किसानों को सहज उपलब्ध इस जानकारी को रोचक तरीके से लेखिका ने पाठकों तक पहुंचाया है कि खीर और लड्डू तथा भूजे के लिए एक ही तरह के अन्न का इस्तेमाल नहीं होता। इसे मक्का जैसी विदेशी फसलों तक के लिए उन्होंने साबित किया है। पापकार्न से लेकर स्वीट

कार्न तक उसके तमाम भेद हैं। नयी प्रजातियों के बीजों के निर्माण की उनकी बतायी प्रक्रिया तो प्रकृति की लीला का रहस्य भेदन है जिसमें आस पास खड़ी फसलें एक दूसरे से लेती देती हैं (स्व-परागण और पर-परागण) तथा इस प्रक्रिया का दूर से सावधानी के साथ मनुष्य पर्यवेक्षण करता रहता है ताकि पोषण प्रदान करने वाली प्रजातियों का विकास कर सके। ये पर्यवेक्षक बागवानी करने वाले सामान्य मनुष्यों से लेकर कृषि वैज्ञानिक तक हो सकते हैं। कुछ वैज्ञानिक तो उनकी किताब में सचमुच रचयिता की तरह चित्रित हुए हैं। संसार भर की फसलों का बीज बैंक तैयार करने के काम में जुटे रूसी वैज्ञानिक निकोलाई वाविलोव और हरित क्रांति के प्रयोगों के साथ जुड़े अमेरिकी वैज्ञानिक नार्मन बोरलाग इसके उदाहरण हैं।

इसके बाद का अध्याय उपज बढ़ाने के लिए खाद के आविष्कार और उसके कारपोरेट विपणन की कथा है। इस आख्यान से हम विस्थापन और संसाधनों के लूट की वर्तमान स्थिति को अच्छी तरह समझ सकते हैं। लैटिन अमेरिका के स्थानीय निवासी चिड़ियों की बीट का इस्तेमाल उपज बढ़ाने के लिए जानते और करते रहे थे। उनके इस इस्तेमाल के बावजूद खाद का स्रोत बचा हुआ था लेकिन जैसे ही इसका पता अंग्रेजों को चला उसके विपणन का एकाधिकार दुनिया भर में एक कंपनी ने हथियाया और कुछ ही समय में वह विशाल प्राकृतिक भंडार खाली हो गया। इस प्राकृतिक खाद का दोहन कर लेने के बाद रासायनिक खाद का खेल शुरू हुआ जिसमें हिटलरी विज्ञान से भी सहायता मिली। विज्ञान के संहारक के साथ ही रक्षक रूप का इससे बड़ा सबूत क्या हो सकता है कि जिन गैसों से नरमेध किया जा सकता था उनसे ही खेतों में फसलों की पैदावार भी बढ़ायी जा सकती है!

पूरी किताब मानव सभ्यता के विकास की भौतिकवादी व्याख्या की तरह है। मार्क्स ने कहा था कि मनुष्य कुछ भी करने से पहले जीवन यापन के साधनों का इंतजाम करता है। इसके क्रम में ही वह प्रकृति के

साथ अंत:क्रिया के जरिये तमाम वस्तुओं का उत्पादन करता है। आबादी में बढ़ोत्तरी के साथ इनकी जरूरत बढ़ती जाती है। ऐसी स्थिति में उसे जीवनोपयोगी उत्पादन को विस्तारित करने की आवश्यकता पड़ती है।

इस आवश्यकता की पूर्ति भी प्रकृति में मौजूद संसाधनों के सहारे ही होती है। नाइट्रोजन हमारे वातावरण में ही थी। फसलों की उपज में इसके योगदान की जानकारी होने से मनुष्य ने उसका सार्थक उपयोग शुरू किया। भोजन के लिए बढ़ती जरूरत ने खेती की लगभग सभी खोजों की प्रेरणा दी और मनुष्य ने जमीन की सीमित मात्रा में ही अधिक से अधिक पैदावार प्राप्त करने के लिए बहुतेरे प्रयोग किये। संसार में धान, गेहूं और मक्का तीन बुनियादी फसलें हैं जिनके परिष्कार ने आबादी की बढ़ोत्तरी के बावजूद भोजन की कमी नहीं होने दी। इन तीनों के संवर्धन की कहानी हरित क्रांति से जुड़ती है। इससे जुड़े उन नकारात्मक प्रभावों का जिक्र लेखिका नहीं भूलतीं जिन्हें आज पंजाब भुगत रहा है।

खेती से पैदा होने वाला अन्न केवल पोषण ही नहीं प्रदान करता बल्कि हमारे शरीर में बाहरी तत्वों के प्रवेश का रास्ता भी यह अन्न ही होता है। अन्न या फसलों की उपज बढ़ाने के सभी प्रयोगों के साथ खतरे भी जुड़े रहते हैं। जैसे जंगली घासों से विकसित होकर अन्न के बीज निकले उसी तरह इन खतरों से बचाव का रास्ता भी मानव सभ्यता निकालेगी। महात्मा गांधी ने किसानों को सबसे अधिक निर्भय प्राणी कहा था। खेती के लिए हिंसक जानवरों, विषाणुओं और आपदाओं से लगातार जूझना पड़ता है। भोजन की जरूरत मनुष्यों को हमेशा रहेगी मुनाफ़े के सौदागर इसलिए खेती पर नजर लगाये रहते हैं। इसलिए खेती को बचाने की वर्तमान लड़ाई के समय इस किताब को पढ़ना प्रत्येक हिंदी भाषी का कर्तव्य है।

गोपाल प्रधान, अम्बेड़कर विश्वविद्यालय, दिल्ली में प्रोफेसर और
मार्क्सवादी आलोचक संपर्कः 9560375988

मंजीत भोला की रागनी

चीख-चीखकै गळे सूखगे कोए सुणता ना आवाज़ रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

आच्छे समय के सपन्यां नै कर दिए ब्योन्त कुढाळे रै
सांझ धूंधळी हो थी पर इब दिन भी सैं म्हारे काळे रै
खेतां म्ह हाड़ गळावणिए ना चढ़ावा खावण आळे रै
हाम जाणां ज्यब दर्द किसा हो पायां के फूटैं छाळे रै
हक नहीं म्हारा दे सकता तै छोडकै कुरसी भाज रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

कदे मंडी कदे फंडी लूटते के लुटणा ए तकदीरां म्हं
वैं भी तै म्हारे रहते कोन्या जो बिठा दिए वज़ीरां म्हं
गरमी सरदी चौमासा गुजरै कपड़े झीरम झीरां म्हं
रोम रोम म्हारा जकड़या सै रै कर्जे की जंजीरां म्हं
भा ठीक जै मिलै फसल का कुण माफ करावै ब्याज रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

मेहुल माल्या कोठारी ना हाम नीरव मोदी बरगे रै
खज़ाना खाली करकै देस का विदेसां में डिगरगे रै
कित जावां हाम कड़ै ठिकाणा सोच सोच कै डरगे रै
मेहनतकश कई इस्सै चिन्ता में आत्म हत्या करगे रै
जिसमें जीणा मुश्किल होज्या चाहिए ना इसा राज रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै

खुद नै खेवैया वो समझै सै जिसनै देखी नैया ना
गऊ रक्षक इसे बणे फिरैं सैं जिनके घर में गैया ना
हम सीधी सादी बात करणीए जाणां छंद सवैया ना
म्हारी वेदना गाण की हिम्मत रखता कोए गवैया ना
मनजीत भोळा साजबाज की कलम नहीं मोहताज़ रै
कती भूखे प्यासे फिरैं भटकते जो पैदा करते नाज रै।

मंगत राम शास्त्री की रागनी

ओढ़ चूंदड़ी पीले़ रंग की आई दिल्ली म्हं
असली भारत माँ नै अलख जगाई दिल्ली म्हं

हाथ म्हं सोट्टा मोट्टा ले रयी मन म्हं भरया यकीन
अस्सी साल उमर म्हं भी वा कती नहीं गमगीन
न्यूं बोल्ली यें किसान विरोधी कानुन बण रे तीन
हात्थां म्हं तै जांदे दिक्खैं साधन और जमीन
खेत बचावण खात्तर आई ताई दिल्ली म्हं
हक ले कै जावांगे न्यूं गरजाई दिल्ली म्हं

रजधान्नी की ड्योढ़ी पै चढ़ माई नै ललकारया
सूड़ ठा दिया देश का यू राज किसा आ रया
अन्नदाता डेरा दिल्ली की देहली़ पै ला रया
उसकी गेल्यां मजदूरां का भी पड़ रया लारा

ऊंच नीच की पाट्टी दिक्खै खाई दिल्ली म्हं
बीरां नै भी सिर की बाजी लाई दिल्ली म्हं

न्यूं कह री वा आज के शासक हो रे सैं हड़खाए
पूंजीपती घरान्यां के जबड़यां म्हं लोग फंसाए
नहीं किसे की सलाह लेई ना सारे नेम पुगाए
ले कै आड करोना की काले़ कानून बणाए
देक्खो कितनी खोटी चाल चलाई दिल्ली म्हं
अगली पीढ़ी दास करण की चाही दिल्ली म्हं

कहै मंगतराम लड़ाई आरोपार की ठण री
एक तरफ लाट्ठी गोली़ सरकार की तण री
दूजी ओड़ खड़ी रैयत दीवार सी चिण री
शांतमयी संघर्ष करांगे योजना बण री
साथ बुजुर्गों के आई तरुणाई दिल्ली म्हं
गाण रागनी पोंहच्या विकरम राही दिल्ली म्हं

लेखक हरियाणा के प्रसिद्ध जनकवि, रागनीकार व गजलकार और अध्यापक है। संपर्क - 90537-93872

महावीर नरवाल

जीवन के संग्राम और समाज बदलने के संघर्ष में कभी हार न मानने वाले डॉक्टर महावीर नरवाल ने रोहतक के पोजीट्रॉन अस्पताल में 9 मई को शाम 6:30 बजे आखिरी सांस ली और इस दुनिया को अलविदा कह गए। उनका जीवन विषेशकर युवा लोगों के लिए प्रेरणा स्रोत की तरह है।

डॉ महावीर नरवाल का जन्म 1 नवंबर 1949 को हरियाणा के ज़िला सोनीपत के गांव बणवासा में हुआ था। वे अपने पिता सूबेदार श्री प्रताप सिंह और माता श्रीमती फूलवती की पहली संतान थे। उन्होंने हाई स्कूल तक की शिक्षा जनता बुटाणा (तहसील गोहाना) गांव के सरकारी स्कूल से प्राप्त की। तत्पश्चात् सन् 1970 में हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार (वर्तमान में चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय) में

बीएससी (कृषि ऑनर्स) में दाखिला लिया और गोल्ड मेडल प्राप्त किया। एमएससी में प्लांट ब्रीडिंग के विषय को चुन लिया और इसी विषय से हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय से ही पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। छात्र जीवन में छात्रों के हितों के लिए होने वाले संघर्षों के प्रति उनका रुझान बढ़ा और हरियाणा छात्र संगठन के सक्रिय सदस्य बन गए। छात्रों की लड़ाई लड़ते हुए अनेक छात्रों के प्रेरणा स्रोत बन गए।

छात्र जीवन में अध्ययन और संघर्ष करते हुए डॉ महावीर नरवाल ने शिक्षक बनने की राह चुनी। पौध-प्रजनन विषय में अध्यापन करते हुए उन्होंने बाजरे की नई किस्म तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे इस दौरान अपने छात्रों के साथ-साथ प्राध्यापकों में भी लोकप्रिय हो गए थे। वह विश्वविद्यालय अध्यापक संघ के अध्यक्ष पद पर भी रहे। टीचर्स एसोसिएशन का जनतन्त्रीकरण करने में डॉक्टर नरवाल की खास भूमिका रही।

डॉ महावीर नरवाल का विवाह सुश्री नीलम से हुआ जो स्कूल में अध्यापिका थी। उनका दांपत्य जीवन बहुत लंबा नहीं चल सका। विवाह के 15 वर्ष बाद उनकी पत्नी नीलम का देहांत हो गया। अब डॉक्टर महावीर नरवाल पर अकेले ही दोनों बच्चों की ज़िम्मेदारी आ गई। पिता के साथ-साथ उन्हें मां की भूमिका भी निभानी पड़ी। बच्चों की परवरिश में सोच-विचार और संस्कार बनाने में भी डॉक्टर नरवाल की महती भूमिका रही। उनकी बेटी नताशा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से पीएचडी की पढ़ाई के दौरान नारी मुक्ति की प्रगतिशील समझ और कार्यों से जुड़ी। सी ए ए के विरोध में उठे आंदोलन में झूठे मुकदमे में फंसाकर उसे जेल में डाल दिया गया। डॉक्टर नरवाल कहते थे, "जेलों से डरने की ज़रूरत नहीं। मेरी बेटी जेल से और मज़बूत होकर निकलेगी।" उनका बेटा आकाश कोलकाता के उच्च कोटि के संस्थान सत्यजीत राय फिल्म और टेलिविज़न संस्थान में एनिमेशन सिनेमा में डिप्लोमा कर रहा है।

डॉक्टर नरवाल ने वैज्ञानिक दृष्टि हासिल की थी, उसे प्रगतिशील जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित समाज बनाने के कार्यों से जोड़ दिया। ज्ञान और विज्ञान को गांव-शहर के आम आदमी के जीवन में उतारने के कार्यों में सार्थक हस्तक्षेप किया। सन् 1987 में हरियाणा में विज्ञान की समझ बढ़ाने, तार्किक सोच बनाने और जनतांत्रिक मूल्यों के संवर्धन के लिए कुछ बुद्धिजीवियों ने 1987 में भारत जन विज्ञान जत्थे के माध्यम से हरियाणा विज्ञान मंच की स्थापना की। डॉक्टर नरवाल इस कार्य में अग्रणी भूमिका निभा रहे थे। पत्रिका साइंस बुलेटिन निकाली गई और 1992 में हिसार में हुई ऑल इंडिया पीपल्स साइंस कॉन्ग्रेस में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

सन 1992 में हिसार जिले का साक्षरता अभियान शुरू हुआ उसमें भी उनकी अग्रणी भूमिका रही सेवानिवृत्ति के पश्चात् डॉक्टर नरवाल रोहतक आ गए। जाट आरक्षण में भड़की हिंसा से चिंतित होकर रोहतक में सद्भावना समिति का गठन किया गया, इसके अध्यक्ष की भूमिका भी डॉक्टर नरवाल ने निभाई।

डॉक्टर नरवाल भारत ज्ञान-विज्ञान समिति के अध्यक्ष रहे। हाल ही में हरियाणा विज्ञान मंच (जो 1987 में स्थापित हुआ था) के अध्यक्ष पद का कार्यभार डॉक्टर नरवाल को सौंपा गया था। इस भूमिका में रहते हुए विज्ञान लोकप्रियकरण के बारे में अनेक रचनात्मक प्रस्ताव रखते रहे।

डॉक्टर नरवाल की जीवन दृष्टि मार्क्सवादी थी। परिवार, समाज, देश और दुनिया को देखने का यह नज़रिया ही उन्हें किसान, मज़दूर, महिलाओं तथा मेहनतकश अवाम के प्रति संवेदनशील इंसान बनाता है और इतने व्यापक संघर्षों के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। डॉक्टर नरवाल सही मायने में बेहतर समाज के निर्माण के वृहद् कार्य में लगे व्यक्तियों में से एक थे।

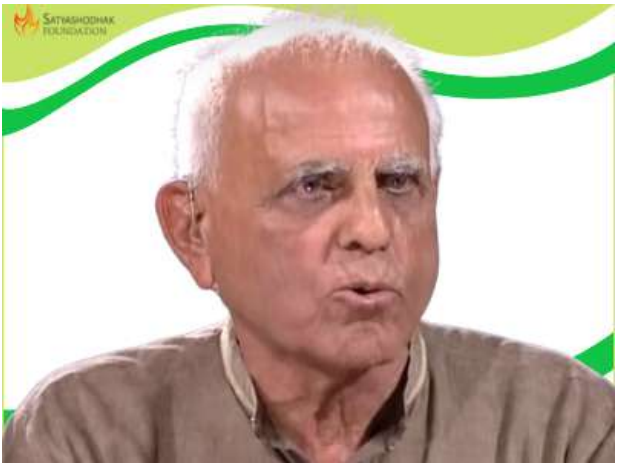

डी.आर. चौधरी

डी.आर. चौधरी अत्यंत गरीब परिवार से थे लेकिन पढ़ाई में तेज होने की वजह से उन्होंने संघर्ष करके एम. ए. तक की पढ़ाई टुकड़ों-टुकड़ों में की। हिसार में बस अड्डे के पास तलाकी गेट है जो कभी पुराने शहर का एक बड़ा दरवाजा होता था। आज भी तोड़ दिए गए उस गेट की दाईं तरफ पहली मंजिल पर एक गोल खंडहरनुमा कमरा सा दिखाई देता है। डी.एन. कॉलेज हिसार में पढ़ते हुए वह अपने कुछ सहपाठियों के साथ उस कमरे में रहते थे।

डी.आर. चौधरी लंबे अरसे तक नए बुद्धिस्ट प्रकाशनों पर एक अंतर्राष्ट्रीय बुद्धिस्ट जर्नल में समीक्षा लिखते रहे थे। विपश्यना और ओशो का डायनेमिक मेडिटेशन का अभ्यास उनकी दिनचर्या का हिस्सा था।

फरवरी 1990 में महम कांड को एक्सपोज करने और चुनाव को रद्द करवाने में उनकी मुख्य भूमिका साहस और जोखिम भरा काम था।

ऐसे ही 1985 में जब 'पींग' अखबार में भजनलाल सरकार से जुड़े भ्रष्टाचार की रिपोर्ट छापने के बदले उन्हें झूठे मुकदमे में गिरफ्तार किया गया तो बिना घबराए कुछ पुस्तकें और कपड़े साथ लेकर पुलिस के साथ चल पड़े।

वे पक्के सेकुलर, समतावादी और उदारवादी सोच के व्यक्ति थे। उपेक्षित तबके और जनसाधारण उनकी सोच के केन्द्रबिन्दु थे। हरियाणा में बेहतर राजनीति और बेहतर संस्कृति के लिए उनके प्रयास सफलता और असफलता का मिश्रण रहे हैं। चौधरी देवी लाल को उन पर पूरा भरोसा था लेकिन ओमप्रकाश चौटाला को वे फूटी आंख नहीं सुहाए। चौधरी बंसीलाल के साथ मिलकर उन्होंने हरियाणा विकास पार्टी को ना केवल खड़ा किया बल्कि सत्तासीन करने में भी मुख्य भूमिका निभाई, लेकिन जल्द ही उनका मोहभंग हो गया। इसी प्रकार आम आदमी पार्टी के उभार में उनका विशेष उत्साह था जो लंबे समय तक नहीं टिक पाया। दिल्ली में अध्यापन करते हुए वे दिल्ली यूनिवर्सिटी टीचर्ज़ एसोसीएशन में काफ़ी सक्रिय थे और उस वक़्त वामपन्थ से उनका सीधा जुड़ाव भी था।

उनकी दो पुस्तकें विशेष रूप से चर्चित रही हैं। 'हरियाणा एट क्रॉस रोड' और 'खाप पंचायत इन मॉडर्न एज' जिसका हिंदी में 'खाप पंचायतों की प्रासंगिकता' शीर्षक से अनुवाद हुआ है। इन पुस्तकों की सामग्री और उनके विभिन्न लेखों में निहित विचार उनके दृष्टिकोण को समग्रता से समझने के माध्यम हैं। ऑनर किलिंग के विरोध में वे सशक्त रूप से खड़े रहे। राज्य में जितने भी ऐसे कांड हुए, डी आर चौधरी व्यक्तिगत रूप से वहाँ जाते थे और अपनी डायरी के नोट्स बनाते थे। खाप पर लिखी गई उनकी पुस्तक में ऑनर किलिंग के मामलों की एक लम्बी सूची दर्ज है। जाति/गोत्र के नाम पर कबीलाई संस्कृति उनके विचार से हरियाणवी समाज के आगे बढ़ने में सबसे बड़े अवरोध हैं।

डी.आर. चौधरी की अगुवाई और सुझाव पर चंडीगढ़, पंचकूला और मोहाली के 17 सामाजिक संगठनों ने मिलकर ट्राइसिटी सोशल ऑर्गेनाइजेशन फेडरेशन (ट्राईसोफेड) की स्थापना की तथा चंडीगढ़ में अनेक सामूहिक गतिविधियां आयोजित की गई।

2013 में हरियाणा प्रशासनिक रिफॉर्म कमीशन की मियाद पूरा होने के साथ ही रोहतक आ गए। डी.आर. चौधरी ने राज्य में सामाजिक-सांस्कृतिक बदलाव की मुहिम के जुनून में हरियाणा इंसाफ सोसाइटी नाम के सामाजिक संगठन को खड़ा किया। इसके अंतर्गत अनेक बौद्धिक स्तर की गतिविधियां आयोजित की गई, भिन्न भिन्न मुद्दों पर सेमिनार रखे गए। लेकिन साल डेढ़ साल बाद ही डी.आर. चौधरी को स्किन की समस्या ने इतना बेचैन कर दिया कि उन्हें रात भर नींद नहीं आती थी। धीरे-धीरे इसी बीमारी ने मानसिक अवसाद का रूप ले लिया और इन परिस्थितियों में हरियाणा इंसाफ सोसाइटी को औपचारिक रूप से समेटना पड़ा। उसके बाद डी.आर. चौधरी सामान्य स्वास्थ्य हासिल नहीं कर पाए।

हरियाणा राज्य में तेजी के साथ आर्थिक प्रगति हुई है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ापन डी.आर. चौधरी और उनके चिंतक मित्रों के लिए एक चुनौती रहा है। उनके शब्दों में जातिवाद/गोत्रवाद के नाम पर कबीलाई सोच, भ्रूण हत्या, बिगड़ता हुआ लिंगानुपात, ऑनर किलिंग आदि ऐसे झाड़ झंखाड़ हैं जिन्हें साफ किए बिना हरियाणा में एक स्वस्थ सामाजिक- सांस्कृतिक वातावरण पैदा करना मुश्किल काम है। इस संबंध में बंगाल का सामाजिक सुधार आंदोलन उन को प्रेरित करता था और बार-बार वे अपनी लेखनी से सामाजिक पिछड़ेपन को बढ़ावा देने वाली प्रवृत्तियों को रेखांकित करते हुए उन्हें निरुत्साहित करने के लिए वे नए औज़ारों को ईज़ाद करने और उनको प्रभावी बनाने के विमर्श को बढ़ावा देते थे। उनकी बौद्धिक संपदा हमारे लिए एक महत्वपूर्ण विरासत है।

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें		
कुरुक्षेत्र	विकास साल्याण	9991878352
	योगेश शर्मा	9896957994
यमुनानगर	बी मदन मोहन	9416226930
अंबाला शहर	जयपाल	9466610508
करनाल	अरूण कैहरबा	9466220145
इंद्री	दयालचंद जास्ट	9466220146
घरौंडा	राधेश्याम भारतीय	9315382236
	नरेश सैनी	9896207547
जीन्द	मंगतराम शास्त्री	
टोहाना	बलवान सिंह	9466480812
नरवाना	सुरेश कुमार	9416232339
सोनीपत	विरेंद्र वीरू	9467668743
पानीपत	दीपचंद निर्मोही	9813632105
पंचकुला	सुरेंद्र पाल सिंह	9872890401
	जगदीश चन्द्र	9316120057
रोहतक	अविनाश सैनी	9416233992
भिवानी	का. ओमप्रकाश	9992702563
दादरी	नवरत्न पांडेय	9896224471
सिरसा	परमानंद शास्त्री	9416921622
हिसार	राजकुमार जांगड़ा	9416509374
महेन्द्रगढ़	अमित मनोज	9416907290

देस हरियाणा प्राप्त करने के लिए संपर्क करें		
मेवात	नफीस अहमद	7082290222
शिमला	एस आर हरनोट	1772625092
राजस्थान (परलीका)	विनोद स्वामी	8949012494
चंडीगढ़	ब्रजपाल	9996460447
	पंजाब बुक सेंटर, सैक्टर 22	
दिल्ली	संजना तिवारी , नजदीक श्रीराम सेंटर,	
	आर.के. मैगजीन , मौरिस नगर, थाने के सामने	
	एनएसडी बुक शॉप	
ई-प्राप्ति	www.notnullcom/desharyana	

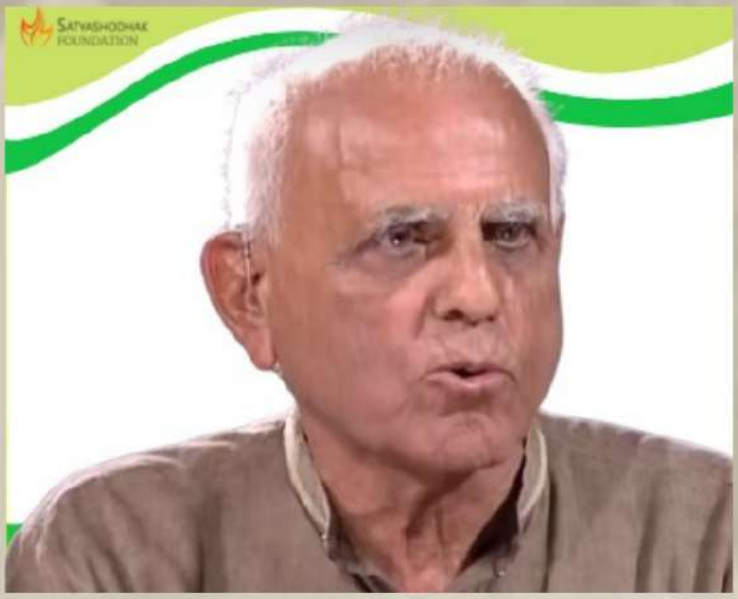

डी. आर. चौधरी

(11 जून,1935- 2 जून, 1921)

सामाजिक न्याय, नागरिक एवं लोकतांत्रिक अधिकार
आंदोलनों के अगुवा जनबुद्धिजीवी।
सादर नमन।

देसहरियाणा